संस्कृति संज्ञान

तमो व्यस्य

पीयूष मंजरी

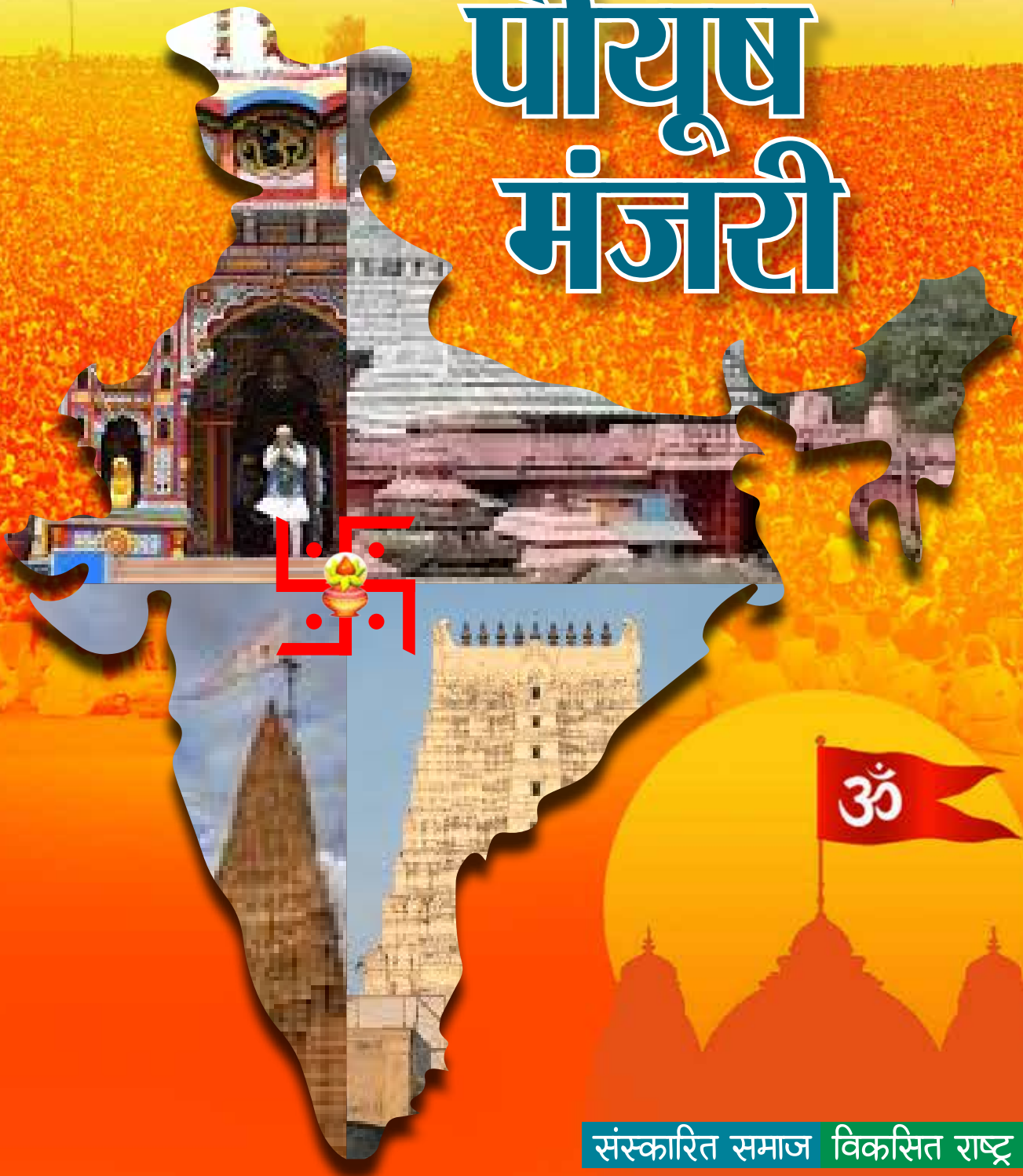

ॐ

संस्कारित समाज विकसित राष्ट्र

भारत के समृद्ध भविष्य के लिए

हरित ऊर्जान्वयन

पीएफसी – नवीकरणीय ऊर्जा के सशक्त विकास को प्रतिबद्ध

जलवायु परिवर्तन पर इसकी राष्ट्रीय कार्य योजना के अनुरूप, भारत सरकार ने नवीकरणीय ऊर्जा विकास को प्राथमिक रूप से प्रोत्साहित किया है। पीएफसी नवीकरणीय ऊर्जा परियोजनाओं के विकास हेतु अगले पाँच वर्षों के लिए विशेष ब्याज दर पर ₹15,000 करोड़ की वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने के लिए वचनबद्ध है। क्योंकि हर हाल में एक स्वच्छ और हरित भविष्य की रचना ही पीएफसी का ध्येय है।

पावर फाइनेंस कॉर्पोरेशन लिमिटेड

(एक नवरत्न पीएसयू)
पंजीकृत कार्यालय: "कुर्तनिधि", 1, बाराखम्भा लेन, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली-110001
फोन: 011-2345 6000, फैक्स: 2341 2545, वेबसाइट: www.pfcindia.com

सशक्त जीवन, सशक्त भारत

/pfcindia पर हमें फॉलो करें

naa

संस्कार गीत

हे प्रभो आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये।
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए।
लीजिये हमको शरण में, हम सदाचारी बनें
ब्रह्मचारी धर्मरक्षक वीरव्रत धारी बनें।
हे प्रभो आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये।
निंदा किसी की हम किसी से भूल कर भी न करें।
ईर्ष्या कभी भी हम किसी से भूल कर भी न करें ।
हे प्रभो आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये।
सत्य बोलें, झूठ त्यागें, मेल आपस में करें,
दिव्य जीवन हो हमारा, यश तेरा गाया करें।
हे प्रभो आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये।
जाये हमारी आयु हे प्रभु लोक के उपकार में,
हाथ डालें हम कभी न भूल कर अपकार में।

हे प्रभो आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये।
कीजिए हम पर कृपा ऐसी हे परमात्मा,
मोह मद मत्सर रहित होवे हमारी आत्मा।
हे प्रभो आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये।
प्रेम से हम गुरु जनों की नित्य ही सेवा करें,
प्रेम से हम संस्कृति की नित्य ही सेवा करें।
हे प्रभो आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये।
योग विद्या ब्रह्म विद्या हो अधिक प्यारी हमे,
ब्रह्म निष्ठा प्राप्त कर के सर्व हितकारी बनें।
हे प्रभो आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये।
हे प्रभो आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये,
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए।

पंडित रामनरेश त्रिपाठी

'संस्कार' और 'संक्रमण' दोनों ही एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में प्रवेश करते हैं 'संस्कार' जगत में मानव सभ्यता की स्थापना करते हैं, जबकि 'संक्रमण' बीमारी फैलाकर मानव सभ्यता का विनाश करता हैं।

संस्कृति संज्ञान

संपादक
डॉ. प्रदीप कुमार सिंघल

सह-संपादक
संजय राय

संपादक मण्डल
सत्य प्रकाश त्रिपाठी
वदना विश्वकर्मा
अरुण कुमार पाण्डेय
लोकेश शर्मा
प्रमोद कुमार मिश्रा
डॉ. सतीश चन्द पाण्डेय

शोध एवं संपादन
संजय कुमार पाण्डेय
गोविन्द कुमार
सच्चिदानन्द

सज्जा
चन्द्रजीत कुमार

प्रकाशन
संस्कृति संज्ञान
पंजी.नम्बर-2221/4/4503

कार्यालयः
128-ए, पॉकेट-एफ, मयूर विहार
फेज-I, दिल्ली-110091
फोनः-9811300176
sanskritisangyan@gmail.com

मुद्रकः
ग्राफिक प्रिंट
प्लॉट नम्बर-383,
पटपड़गंज इण्डस्ट्रियल एरिया,
दिल्ली - 110092

स्मारिका में छपे समस्त विचार लेखकों के अपने विचार हैं। संपादक मंडल एवं संस्था का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। न्यायक्षेत्र दिल्ली।

अनुक्रमणिका

14 सार्वभौमिक और सार्वकालिक होती है संस्कृति

24 स्वावलंबन, स्वाभिमान और विकास के अन्तर-संबंध

27 वर्तमान में धर्म और अध्यात्म की स्थिति

29 हीनता की कुंठा से उबरने के लिए आवश्यक है इतिहास का पुनर्लेखन

32 स्वअनुशासन ही है 'आत्मनिर्भर भारत' की कुंजी

36 कैसे हो इतिहास लेखन की सांस्कृतिक विकृतियों का निवारण

42 प्रदूषणः सामाजिक-मानसिक संदर्भ

44 नैतिक बल, संसाधन एवं भ्रष्टाचार

46 विश्व पटल पर सनातन धर्म

49 संस्कृत भारत का अभिज्ञान

55 नवभारत में अर्थ अर्जन : शुचिता व उद्यमिता की आवश्यकता

61 राष्ट्रवाद और राजनीति

64 भारत में वर्तमान शिक्षाः दशा व दिशा

67 कैसे हो मानव का भारतीयकरण

70 आधुनिक जीवन में रिश्ते : वैदिक विचारधारा के परिपेक्ष में

72 आधुनिक प्रौद्योगिकी क्रांति व सामाजिक जीवन में परिवर्तन

78 स्वातंत्र्योत्तर कविता में सांस्कृतिक दृष्टि

81 संस्कारित समाज निर्माण में संतों की भूमिका

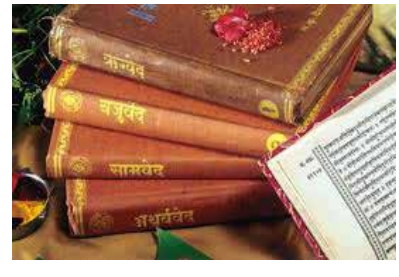

राष्ट्र व समाज की आधारशिला है संस्कार

संस्कृति संज्ञान संस्था की स्थापना समाज के कुछ संस्कारी एवं राष्ट्रवादी लोगों द्वारा की गई है। इसका उद्देश्य भारतीय समाज को संस्कारित एवं भारतवर्ष को एक विकसित राष्ट्र बनाना है। यह महसूस किया गया है कि पिछले कुछ दशकों से भारतीय समाज अपने मूलभूत संस्कारों एवं सस्कृतियों से दूर हो रहा है। संस्कार एवं संस्कृति मनुष्य को अपने समाज और राष्ट्र से जोड़ते हैं और तभी राष्ट्र का एकीकरण संभव है। संस्कारित समाज ही राष्ट्रवादी भावना को जागृत करता है एवं राष्ट्रवादी समाज ही किसी देश को विकसित राष्ट्र बनाकर सुख समृद्धि एवं शांति प्रदान करता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये संस्था निम्न बिन्दुओं पर काम करेगी।

1. भारतवर्ष के नागरिकों में देश की संस्कृति, सभ्यता, संस्कारों, रीति-रिवाजों, राष्ट्रहित एवं राष्ट्र प्रेम के बारे में न केवल जागृत करना वरना उनके मन मानस में इस भावना को सुदृढ़ करना है।

2. देश के बुद्धिजीवी, धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं, स्कूलों, विद्यालय, विश्वविद्यालय समाज के अन्य वर्ग इत्यादि के लिये सेमिनार, गोष्ठी, सार्वजनिक व्याख्यान इत्यादि का आयोजन करना।

3. संस्था के उद्देश्यों का प्रिंट, इलेक्ट्रानिक, सोशल एवं अन्य मीडिया के द्वारा प्रचार प्रसार करना।

4. समाज के विभिन्न वर्गों जैसे राजनीतिज्ञ, अफसरशाह, डाक्टर, इंजीनियर, अध्यापक, पत्रकार इत्यादि को संस्था एवं उसके उद्देश्यों के साथ जोड़ना।

5. देश के जानेमाने लेखकों, पत्रकारों, साहित्यकारों एवं बुद्धिजीवियों इत्यादि से इस विषय के विभिन्न पहलुओं पर लिखे लेखों को संग्रहीत

संस्कृति संज्ञान संस्था इन सभी विषयों को लेकर संपूर्ण समर्पण भाव से पूरे देश में लोगों को जागरूक करने का इरादा रखती है। संस्था का मानना है कि सशक्त राष्ट्र निर्माण के लिये हमारी बुनियाद मजबूत होनी चाहिये। यह बुनियाद तभी मजबूत होगी, जब हम अपने ऋषियों, मुनियों, मनीषियों, विचारकों, अन्वेषकों, समाज सुधारकों और ग्रंथों द्वारा दिये गये सनातन मूल्यों को अपने दैनिक एवं सामाजिक जीवन में उतारें।

कर स्मारिका का निरंतर प्रकाशन करना तथा उसका वितरण समाज के विभिन्न वर्गों में करना।

6. संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना करना।

संस्कृति संज्ञान संस्था इन सभी विषयों को लेकर संपूर्ण समर्पण भाव से पूरे देश में लोगों को जागरूक करने का इरादा रखती है। संस्था का मानना है कि सशक्त राष्ट्र निर्माण के लिये हमारी बुनियाद मजबूत होनी चाहिये। यह बुनियाद तभी मजबूत होगी, जब हम अपने ऋषियों, मुनियों, मनीषियों, विचारकों, अन्वेषकों, समाज सुधारकों और ग्रंथों द्वारा दिये गये सनातन मूल्यों को अपने दैनिक एवं सामाजिक जीवन में उतारें।

वर्तमान भारत में हमारे चारों तरफ मूल्यों का क्षरण देखा जा सकता है। यह हम सबके लिये और आधुनिक भारत के भविष्य के लिये गंभीर चिंता का विषय है। हमारे मूल्य नहीं बचेंगे तो समाज और परिवार नहीं बचेगा। समाज और परिवार नहीं बचेगा तो भारत वर्ष मजबूत नहीं होगा। ऐसे वातावरण को बदलना आज के समय की जरूरत है। हमारा यही प्रयास है कि नये भारत के निर्माण में हम देश की बुनियाद को मजबूत करें।

कोई भी राष्ट्र हो या व्यक्ति उसके जीवन में मूल्यों का अहम योगदान होता है, क्योंकि इन्हीं मूल्यों के आधार पर विवेक का इस्तेमाल करके सही गलत की परख संभव है। मनुष्य के जीवन की प्रथम पाठशाला उसका परिवार और समाज होता है। आज के समय में परिवार विघटित हो रहे हैं और समाज मूल्यों से गिरता जा रहा है। हमारा उद्देश्य समाज में अपने सनातन मूल्यों, परंपराओं, संस्कृति और सभ्यता की पुनर्प्रतिष्ठा करके इसे सबल बनाना है।

वैश्वीकरण के इस युग में भौतिकतावाद लोगों के सिर पर चढ़कर बोल रहा है। व्यक्ति व समाज दोनों इसके शिकार हुये हैं। चारों तरफ साम्प्रदायिकता, जातिवाद, हिंसा, असहिष्णुता और चोरी, डकैती की बढ़ती प्रवृत्ति समाज में मूल्यों के विघटन का ही उदाहरण है। व्यक्ति और समाज धर्म के मौलिक सिद्धांतों से भटक चुके हैं। हमारे खान-पान, रहन-सहन और भाषाशैली में भी चिंताजनक गिरावट आयी है। युवा पीढ़ी अपने मूल्यों का परित्याग करके पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण में डूबती जा रही है। इसलिये मूल्यों की तरफ एक बार फिर से लौटना आज के समय की सबसे महत्वपूर्ण जरूरत है। नैतिक मूल्य रहेंगे तो ही हमारा समाज बचेगा। हम अपने संस्कृति और सभ्यता को पुनर्प्रतिष्ठित करके समाज और राष्ट्र को पुराने वैभव की तरफ ले जाने के लिये दृढ़ संकल्पित हैं। इसके लिये हमें जो भी प्रयास करने होंगे, करेंगे। यही हमारा शिव-संकल्प है। हमें पूरा विश्वास है कि समाज के सहयोग से हम अपने इस उद्देश्य को प्राप्त करने में पूरी तरह सफल होंगे और हमारा राष्ट्र एक बार फिर से विश्वगुरु बनकर समस्त संसार का मार्गदर्शन करेगा।

(डॉ. प्रदीप कुमार सिंघल)

सनातन में समाहित है विश्व शांति का सूत्र

काल की गति अबूझ है। सनातन की गति सरल और सहज समझ में आती है। जो सत्य है वही सनातन है। सनातन चिर पुरातन और नित्य नूतन है। जब हम भारत की संस्कृति की बात करते हैं तो यह भी उसी सनातन का हिस्सा है, जो धरती पर सृष्टि की रचना के बाद अनादि काल से इस भू-भाग में पुष्पित, पल्लवित और विकसित हुई है।

भारतीय समाज की आकांक्षा समस्त सृष्टि में उपस्थित जड़ और चेतन के साथ तादात्म्य स्थापित करके जीने की रही है। हमारे पुरखों ने सर्वशक्तिमान द्वारा निर्मित इस ब्रह्मांड की सूक्ष्म से सूक्ष्म शक्तियों को अपने चिंतन-मनन और शोध के सहारे अपनी अंतरप्रज्ञा से समझने का प्रयास किया है और यह प्रयास अनवरत जारी है।

भारतीय जनमानस समस्त विश्व के कल्याण की उदात्त आकांक्षा रखता है। यही कारण है कि हम सत्यनारायण की कथा या किसी धार्मिक अनुष्ठान के बाद सामूहिक घोष करते हैं, जिसमें कहा जाता है, 'धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो, प्राणियों में सद्भावना हो, विश्व का कल्याण हो और सत्य सनातन की जय हो'। यह भाव हमारे अस्तित्व की सबसे बड़ी शक्ति है और इस भाव से ही विश्व का कल्याण संभव है।

इस दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि पुरखों से विरासत में मिली यह परंपरा वैश्वीकरण के अंधानुकरण में गुम होती जा रही है। हमारे सनातन मूल्य क्षीण होते जा रहे हैं। आज की युवा पीढ़ी हमसे अधिक समझदार है। लेकिन सनातन मूल्यों और परंपराओं को लेकर उसके मन में कुंठा का भाव प्रबल है।

जब हम जींस और टी-शर्ट पहने, रेबैन का चश्मा लगाये युवकों-युवतियों को मंदिर में सिर झुकाते देखते हैं तो उम्मीद की एक किरण नजर आती है। यह पीढ़ी वास्तव में समझदार है। इस पीढ़ी में देश-दुनिया की समझ हमसे अधिक है। आधुनिकता और भौतिकतावाद के मकड़जाल में बुरी तरह फंसे होने के बावजूद ईश्वर में उसकी आस्था बनी हुई है। जरूरत है इस पीढ़ी को भारत के सनातन मूल्यों और परंपराओं के प्रति आस्था और विश्वास को दृढ़ किया जाय।

'पीयूष मंजरी' स्मारिका का प्रकाशन इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया गया है। आज जब पूरी मानवता वैश्विक महामारी कोरोना के संकट से उबरने का प्रयास कर रही है, ऐसे में सनातन मूल्यों और परंपराओं की तरफ लोगों का ध्यान अवश्य दिलाया जाना चाहिये। हमारा प्रयास भले ही छोटा है, लेकिन हमारा उद्देश्य महान है। विश्वास है कि यह स्मारिका आप सबके लिये संग्रहणीय ही नहीं, बल्कि अनुकरणीय भी बनेगी और हमारा समाज सनातन परंपरा का वाहक बनकर समूचे विश्व में पूरे आत्मविश्वास एवं दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ अपने मूल्यों को आजीवन प्रचारित-प्रसारित करने का संकल्प लेगा।

संजय राय
सह-संपादक

नितिन गडकरी
NITIN GADKARI

सत्यमेव जयते

मंत्री
सड़क परिवहन एवं राजमार्ग और
सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम
भारत सरकार
Minister
Road, Transport & Highways and
Micro, Small & Medium Enterprises
Government of India

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि **संस्कृति संज्ञान संस्था**, दिल्ली द्वारा भारतीय संस्कृति, सभ्यता के प्रचार–प्रसार के लिए *'पीयूष मंजरी'* नाम से स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

भारतीय सभ्यता व संस्कृति विश्व की सबसे पुरानी सभ्यताओं में से एक है। विश्वभर में आज भारतीय जीवन पद्धति व संस्कृति के महत्व को स्वीकार किया जा रहा है। ऐसे समय में सनातन भारतीय मूल्यों, परम्पराओं, संस्कृति एवं संस्कारों को एक बार फिर से प्रतिष्ठा प्रदान करके विश्व को कल्याण का मार्ग दिखाना बहुत आवश्यक है। विश्वास है *'पीयूष मंजरी'* के माध्यम से देश की युवा पीढ़ी को अपनी जड़ों से जुड़ने और देश की संस्कृति को दुनिया भर में प्रचारित–प्रसारित करने की प्रेरणा मिलेगी।

मैं, **'संस्कृति संज्ञान'** के पदाधिकारियों और सदस्यों को हार्दिक शुभकामना देता हूं और स्मारिका के सफल प्रकाशन की कामना करता हूं।

नितीन गडकरी

(नितिन गडकरी)

168, Udyog Bhawan, Rafi Marg, New Delhi-110011, Ph. : 011-23061566, 011-23061739 Fax : 011-23063141
E-mail : min-msme@nic.in

नरेन्द्र सिंह तोमर
NARENDRA SINGH TOMAR

सत्यमेव जयते

कृषि एवं किसान कल्याण,
ग्रामीण विकास तथा पंचायती राज मंत्री
भारत सरकार
कृषि भवन, नई दिल्ली

MINISTER OF AGRICULTURE & FARMERS' WELFARE,
RURAL DEVELOPMENT AND PANCHAYATI RAJ
GOVERNMENT OF INDIA
KRISHI BHAWAN, NEW DELHI

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि संस्कृति संज्ञान संस्था, दिल्ली द्वारा भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के प्रचार-प्रसार के लिए **पीयूष मंजरी** नामक स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है ।

भारतीय सभ्यता व संस्कृति विश्व की सबसे प्राचीन सभ्यताओं में से एक है । आज विश्वभर में भारतीय जीवन पद्धति व संस्कृति के महत्व को स्वीकार किया जा रहा है । ऐसे समय में सनातन भारतीय मूल्यों, परम्पराओं, संस्कृति एवं संस्कारों को एक बार फिर प्रतिष्ठा प्रदान कर विश्व को कल्याण का मार्ग दिखाना बहुत आवश्यक है ।

मुझे विश्वास है कि पीयूष मंजरी के माध्यम से देश की युवा पीढ़ी को अपनी जड़ों से जुड़ने और भारतीय संस्कृति को दुनिया भर में प्रचारित-प्रसारित करने की प्रेरणा मिलेगी।

मैं इस अवसर पर संस्कृति संज्ञान के पदाधिकारियों और सदस्यों को हार्दिक शुभकामनाएं देते हुए स्मारिका के सफल प्रकाशन की कामना करता हूं ।

27/4/20

(नरेन्द्र सिंह तोमर)

Office: 'G' Wing, Ground Floor, Krishi Bhawan, New Delhi- 110001, Tel.: 011-23782373, 23782327 Fax: 011-23385876
Resi.: 3 Krishna Menon Marg, New Delhi-110001, Ph.: 011-23794697 / 98, Fax: 011-23794696

थावरचन्द गेहलोत
THAAWARCHAND GEHLOT
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री
भारत सरकार एवं
नेता सदन (राज्यसभा)
MINISTER OF SOCIAL JUSTICE
AND EMPOWERMENT
GOVERNMENT OF INDIA &
LEADER OF THE HOUSE (RAJYA SABHA)

सत्यमेव जयते

कार्यालय: 202, सी विंग, शास्त्री भवन,
नई दिल्ली–110115
Office : 202, 'C' Wing, Shastri Bhawan,
New Delhi-110115
Tel. : 011-23381001, 23381390, Fax : 011-23381902
E-mail : min-sje@nic.in
दूरभाष: 011-23381001, 23381390, फैक्स: 011-23381902
ई-मेल : min-sje@nic.in

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि संस्कृति संज्ञान संस्था , दिल्ली द्वारा भारतीय संस्कृति, सभ्यता के प्रचार-प्रसार के लिए 'पीयूषमंजरी' नाम से स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

भारतीय सभ्यता व संस्कृति विश्व की सबसे पुरानी सभ्यताओं में से एक है। विश्वभर में आज भारतीय जीवन पद्धति व संस्कृति के महत्व को स्वीकार किया जा रहा है। ऐसे समय में सनातन भारतीय मूल्यों, परम्पराओं, संस्कृति एवं संस्कारों को एक बार फिर से प्रतिष्ठा प्रदान करके विश्व को कल्याण का मार्ग दिखाना बहुत आवश्यक है।विश्वास है 'पीयूष मंजरी' के माध्यम से देश की युवा पीढ़ी को अपनी जड़ों से जुड़ने और देश की संस्कृति को दुनिया भर में प्रचारित-प्रसारित करने की प्रेरणा मिलेगी।

मैं, 'संस्कृति संज्ञान' के पदाधिकारियों और सदस्यों को हार्दिक शुभकामना देता हूं और स्मारिका के सफल प्रकाशन की कामना करता हूं।

26.6.20

(थावरचंद गेहलोत)

राज्य मंत्री
पोत परिवहन (स्वतंत्र प्रभार),
रसायन एवं उर्वरक
भारत सरकार

सत्यमेव जयते

Minister of State
Shipping (Independent Charge),
Chemicals and Fertilizers
Government of India

मनसुख मांडविया
MANSUKH MANDAVIYA

20 फरवरी, 2020

शुभेच्छा संदेश

'संस्कृति संज्ञान' संस्था के विशिष्ट उद्देश्य को उजागर करती हुई 'पियूष मंजरी' स्मारिका के प्रकाशन पर मेरी बहुत सारी शुभकामनाएँ हैं ।

भारतीय संस्कृति, संस्कार एवं परंपरा जैसे विषयो पर आधारित 'पियूष मंजरी' समस्त भारतीय जन मानस पर नया आयाम स्थापित करे ऐसी मेरी शुभकामना है ।

भविष्य मे भी संस्कृति संज्ञान की 'सांस्कृतिक समाज' तथा 'विकसित राष्ट्र' जैसे भावनाओ को परिपूर्ण करते हुए कार्यो के लिए मैं आशावादी हूँ तथा नए प्रयत्नों और कार्यो के लिए मेरी शुभकामनाएँ हैं ।

(मनसुख मांडविया)

Room No. 201, Transport Bhavan, New Delhi - 110001 Tel : 011-23717422, 23717423, 23717424, Fax : 011-23714653

फग्गन सिंह कुलस्ते
FAGGAN SINGH KULASTE

सत्यमेव जयते

इस्पात राज्य मंत्री
भारत सरकार
उद्योग भवन, नई दिल्ली-110011
MINISTER OF STATE FOR STEEL
GOVERNMENT OF INDIA
UDYOG BHAWAN, NEW DELHI-110011

दिनॉक : 16 मार्च, 2020

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि **संस्कृति संज्ञान संस्था, दिल्ली** द्वारा भारतीय संस्कृति, सभ्यता के प्रचार प्रसार हेतु **"पीयूष मंजरी"** शीर्षक से स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

भारतीय सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। जिसका प्रभाव विश्व के अनके भागों में हो रहा है। आज भारतीय समाज में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की पुनर्स्थापना एवं राष्टवाद, राष्ट्रहित एवं राष्ट्रप्रेम की भावना को जागृत करने की बहुत आवश्यकता है।

मैं, **संस्कृति संज्ञान संस्था** के पदाधिकारियों, सदस्यों को हार्दिक बधाई देता हूँ तथा स्मारिका के सफल प्रकाशन की कामना करता हूँ।

(फग्गन सिंह कुलस्ते)

Room No. 146, Udyog Bhawan, New Delhi-110011 Phone No. 011-23063810, 23061370, Fax : 011-23062703
Delhi Residence : 8, Safdarjung Lane, New Delhi-110011, Phone : 011-23792158

सार्वभौमिक और सार्वकालिक होती है संस्कृति

रवि शंकर
वरिष्ठ पत्रकार एवं इतिहासविद

संस्कृति एक व्यापक स्तर पर प्रयोग किया जाने वाला शब्द है। इसके बाद भी इसकी सामान्य समझ लोगों को नहीं के बराबर है। बहुधा हम सांस्कृतिक कार्यक्रमों का उल्लेख सुनते हैं, स्वयं भी उनके आयोजन को देखते हैं, परंतु सांस्कृतिक कार्यक्रम के नाम पर केवल नृत्य-संगीत ही होता है। समझने की बात यह है कि संस्कृति केवल नृत्य-संगीत मात्र नहीं है। संस्कृति मनुष्य का व्यवहार है, आचार है। हर वह व्यवहार और आचार जो कि सम्यक हो, मानवता के हित में हो, संस्कृति होती है। हमें यह भी समझना होगा कि संस्कृति पूरे मानव जाति के लिए एक ही होती है, ढेर सारी नहीं, जैसा कि आज

हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि अंग्रेजी तथा अन्यान्य यूरोपीय भाषा के कल्चर और सिविलाइजेशन जैसे शब्द किसी भी दृष्टिकोण से संस्कृति और सभ्यता के पर्यायवाची नहीं साबित होते। संस्कृति और सभ्यता जैसे शब्द जिस भाव को व्यक्त करते हैं, वे पूरी मानव जाति के लिए एकसमान ही हो सकते हैं। ऐसे होना संभव नहीं है कि देश, काल आदि से उनमें कुछ परिवर्तन आ जाए।

शब्द प्रयोग किया जाता है झ भारतीय संस्कृति, अमेरिकी संस्कृति, आदिवासी संस्कृति आदि आदि। वहाँ भले ही संस्कृति शब्द का प्रयोग किया जा रहा हो, परंतु उसका भाव रीति-रिवाजों और परंपराओं से होता है। इसलिए हमें वहाँ उन्हीं शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। शब्दों के प्रयोग में इस लापरवाही से अनेक मिथ्या भ्रमों का निर्माण होता है।

हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि अंग्रेजी तथा अन्यान्य यूरोपीय भाषा के कल्चर और सिविलाइजेशन जैसे शब्द किसी भी दृष्टिकोण से संस्कृति और सभ्यता के पर्यायवाची नहीं साबित होते। संस्कृति और

सभ्यता जैसे शब्द जिस भाव को व्यक्त करते हैं, वे पूरी मानव जाति के लिए एकसमान ही हो सकते हैं। ऐसे होना संभव नहीं है कि देश, काल आदि से उनमें कुछ परिवर्तन आ जाए। उदाहरण के लिए माता-पिता को सम्मान देने की संस्कृति पूरी मानव जाति के समस्त पृथिवी पर समान रूप से पालनीय होगी। सम्मान देने के लिए अभिवादन आदि का तरीका भिन्न हो सकता है, परंतु सम्मान देना ही संस्कृति कहलाएगी, अपमान करना नहीं। इसी प्रकार भूख लगने पर बिना साथ के लोगों को पूछे स्वयं खाने लगना, किसी भी देश में रहें, संस्कृति नहीं कही जा सकती। ऐसे ढेरों उदाहरण दिए जा सकते हैं।

संस्कृति को समझने के लिए हमें मनुष्य और उसकी उत्पत्ति के सिद्धांतों को पहले समझना होगा। पशुओं से मनुष्य की भिन्नता और श्रेष्ठता को विश्व के अन्यान्य चिंतक भी स्वीकार करते हैं। चाहे वह ग्रीक दार्शनिक अरस्तु हों या फिर ईसा और मोहम्मद के अनुयायी हों या फिर आधुनिक काल के अर्थशास्त्री कार्ल मार्क्स हों। अरस्तु के अनुसार मनुष्य एक सामाजिक पशु है। प्रश्न उठता है कि सामाजिक होने का अभिप्राय क्या है? अन्य मनुष्यों के साथ मिल-जुल कर रहना, एक-दूसरे की सहायता करना, एक उद्देश्य के साथ काम करना, यही सामाजिकता मानी जाती है। परंतु यह भाव तो मनुष्य के इतर भी अनेक पशुओं में पाया जाता है और मनुष्य से कहीं अधिक पाया जाता है। बंदरों, चींटियों, मधुमक्खियों आदि को देखें तो उनमें इस सामाजिकता का भाव मनुष्य से कहीं अधिक दिखता है। सामाजिकता के कारण ही तो पशु-पक्षियों के बड़े-बड़े दल हजारों किलोमीटर का अपना प्रवास

पूरा कर पाते हैं। इसलिए यह कहना अधूरा और अपूर्ण है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।

लंबे समय तक अरस्तु के इसी प्रसिद्ध कथन के आधार पर पाश्चात्य विचारकों का चिंतन चलता रहा। इस सामाजिकता से सत्ता और सत्ता से राजनीति पैदा होती है और इसलिए लंबे समय तक पश्चिमी यूरोपीय विद्वान राजनीति केंद्रित चिंतन ही करते रहे। इस बीच में यहूदियों और फिर ईसाइयों का वर्चस्व बढ़ा। यहूदी-ईसाई मान्यता में मनुष्य मिट्टी का एक पुतला माना गया। इस्लाम भी उनका समगोत्रीय मजहब होने के कारण ऐसा ही मानता है। हालांकि उन्होंने आत्मा के होने की बात तो स्वीकार की, परंतु उनकी मान्यता में शरीर के नष्ट होने के बाद आत्मा भी एक प्रकार से नष्ट जैसी ही हो जाती है। उसे कब्र में कयामत तक प्रतीक्षा करनी होती है। इस प्रकार उनके लिए मनुष्य एक शरीर से अधिक कुछ नहीं था और उसका केवल एक ही जन्म संभव था। इसलिए उन्हें इस एक जन्म को अधिक से अधिक सुखी बनाने की चिंता थी। फिर उन्नीसवीं शताब्दी में एडम स्मिथ और कार्ल मार्क्स ने नई व्याख्याएं दीं। उन्होंने अपनी सारी व्याख्या मनुष्य को एक आर्थिक प्राणी मान कर की। अर्थ यानी कि उपयोगी संसाधनों के संग्रह की प्रवृत्ति मनुष्य में होती है, परंतु हम पाते हैं कि अपनी समझ और आवश्यकता के अनुसार अन्य पशु भी तो संसाधनों का संग्रह करते ही हैं। पक्षी तिनका-तिनका जोड़ कर घोंसला बनाते हैं, यह संसाधनों का संग्रह ही तो है। दूसरी ओर हम यह भी पाते हैं कि मनुष्य बिना किसी दबाव के दूसरों के लिए अपने धन का त्याग कर देते हैं। पिता अपनी संतानों के लिए अपने सुख का त्याग करता है, सन्यासी लोक के कल्याण के लिए अपने सुखों का त्याग करता है। एक आर्थिक प्राणी तो ऐसा नहीं कर सकता। इसलिए यह भी एक अधूरा और अपूर्ण कथन है। आज विश्वभर में मनुष्य और उसकी सभ्यता के लिए जो भी चिंतन किया जा रहा है, उसके केंद्र में यही दो अवधारणाएँ हैं और ये दोनो ही अवधारणाएं अधूरी और अपूर्ण हैं।

मनुष्य के बारे में भारतीय शास्त्रों में काफी चिंतन मिलता है और वह समग्र और संपूर्ण चिंतन है। उदाहरण के लिए मनुष्य और पशुओं में मौलिक अंतर की चर्चा करते हुए एक नीतिवाक्य में कहा गया है -

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिःनराणाम्।
धर्मोहि तेषां अधिकोविशेषो, धर्मेणहीना पशुभिः समाना।।

इसमें कहा गया है कि मनुष्यों तथा पशुओं में चार बातें समान हैं झ भूख, निद्रा, भय और मैथुन यानी प्रजनन। इस पर भी मनुष्य पशुओं से भिन्न है, धर्म के कारण। पशुओं का व्यवहार प्रकृति से नियत होता है, मनुष्यों का धर्म से। धर्म आचरण से जुड़ा है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन के आचरणों को जब हम किन्हीं भावविशेषों से जोड़ कर संपादित करते हैं, तब वही पशुवत कर्म धर्म में परिणत हो जाते हैं। भूख जब भक्ष्य और अभक्ष्य में भेद करने लगे तो वह धर्म कहलाती है। मैथुन के पशुवत कर्म को जब धर्म की मयार्दा से बांधा जाता है तो वह विवाह में परिणत हो जाता है और विवाह के धर्म में बंधने से मनुष्य के परिवार की सृष्टि होती है। इस प्रकार भारतीय मनीषियों का मत था कि मनुष्य एक धार्मिक प्राणी है। धर्म का निश्चय बुद्धि से होता है। बुद्धि का सर्वाधिक विकास मनुष्य में ही हुआ है। इसलिए भारतीय चिंतन में मनुष्य एक बुद्धिशील तथा धार्मिक प्राणी माना गया इसी बात को भर्तृहरि ने इन शब्दों में कहा है,

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानम न शीलं न गुणो न धर्मः। ते मृत्युलोके भुवि भारभूताः मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति।।

यानी जिस मनुष्य के पास न विद्या है , न तप है न दान देने की प्रवृत्ति है, जिसके पास न ज्ञान है, न उत्तम आचरण है, न तो कोई गुण है और न धर्म का पालन है, वे लोग मनुष्य के रूप में इस मृत्यु लोक में पृथ्वी पर भार बनकर पशु होकर विचरण करते है। विद्या, ज्ञान, शील, ये तीनों बुद्धि पर आश्रित होते हैं। बुद्धि सही हो तो ये तीनों प्राप्त होते हैं, बुद्धि विकृत हो तो नहीं मिलते। इसका सर्वोत्तम उदाहरण दुर्योधन है। तप, दान, गुण, ये तीनों धर्म पर आश्रित हैं। धर्मयुक्त आचरण से ही तप, दान और गुणों का विकास होता है। इसप्रकार इस श्लोक में भी मनुष्य एक बुद्धिशील धार्मिक प्राणी ही माना गया है। यही कारण है कि सबसे

अधिक महत्वपूर्ण माने जाने वाले गायत्री मंत्र जोकि चारों वेदों में प्राप्त होता है, में बुद्धि को ही प्रेरणा देने की बात कही गई है। इस प्रकार हम पाते हैं कि जो मनुष्यता है, वही संस्कृति है, जो संस्कृति है, वही मनुष्यता है। इसलिए संस्कृति देश, काल से अप्रभावित ही रहती है। संस्कृति को समझने के लिए एक और शब्द धर्म को समझना अच्छा रहेगा।

धर्म क्या है?

धर्म का अर्थ होता है, धारण, अर्थात जिसे धारण किया जा सके, धर्म ,कर्म प्रधान है। गुणों को जो प्रदर्शित करे वह धर्म है। धर्म को गुण भी कह सकते हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि धर्म शब्द में गुण अर्थ केवल मानव से संबंधित नहीं। पदार्थ के लिए भी धर्म शब्द प्रयुक्त होता है यथा पानी का धर्म है बहना, अग्नि का धर्म है प्रकाश, उष्मा देना और संपर्क में आने वाली वस्तु को जलाना। व्यापकता के दृष्टिकोण से धर्म को गुण कहना सजीव, निर्जीव दोनों के अर्थ में नितांत ही उपयुक्त है। धर्म सार्वभौमिक होता है। पदार्थ हो या मानव पूरी पृथ्वी के किसी भी कोने में बैठे मानव या पदार्थ का धर्म एक ही होता है। उसके देश, रंग रूप की कोई बाधा नहीं है। धर्म सार्वकालिक होता है यानी कि प्रत्येक काल में युग में धर्म का स्वरूप वही रहता है। धर्म कभी बदलता नहीं है। उदाहरण के लिए पानी, अग्नि आदि पदार्थ का धर्म सृष्टि निर्माण से आज पर्यन्त समान है। धर्म और रिलीजियन अथवा मजहब अथवा सम्प्रदाय में मूलभूत अंतर है। धर्म का अर्थ जब गुण और जीवन में धारण करने योग्य होता है तो वह प्रत्येक मानव के लिए समान होना चाहिए। जब पदार्थ का धर्म सार्वभौमिक है तो मानव जाति के लिए भी तो इसकी सार्वभौमिकता होनी चाहिए। अतः मानव के सन्दर्भ में धर्म की बात करें तो वह केवल मानव धर्म है।

इसलिए भारतीय शास्त्रों ने धर्म की परिभाषाओं में कहीं भी मजहबी मान्यताओं को स्थान नहीं दिया। धर्म की सभी परिभाषाएं हमारे आचरण और व्यवहार का विषय हैं। इसलिए कहावत बनी धारयते इति धर्मः यानी जिसे धारण किया जाता है, वही धर्म है। वेद व्यास लिखते हैं - धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः। महा. कर्ण पर्व 69/58 अर्थात् धर्म ही प्रजा को धारण करता है इसलिये ही उसे धर्म कहते है। पद्म पुराण में कहा गया है - श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैव अनुवर्त्यताम्, आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत (सृष्टि. 19/357) अर्थात् धर्म का सर्वस्व क्या है, सुनो और सुनकर उस पर चलो और जो व्यवहार तुम्हें अपने साथ पसंद न हो, वह व्यवहार दूसरों के साथ न करो। इन आचरणों से ही मनुष्य पशु से ऊपर उठता है। राजर्षि मनु ने धर्म की परिभाषा करते हुए लिखा है - ***धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः, धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम्।*** अर्थात् धृति यानी धैर्य, क्षमा (दूसरों के द्वारा किये गये अपराध को माफ कर देना, क्षमाशील होना), दम (अपनी वासनाओं पर नियन्त्रण करना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (अन्तरंग और बा' शुचिता), इन्द्रिय निग्रहः (इन्द्रियों को वश मे रखना), धी (बुद्धिमत्ता का प्रयोग), विद्या (अधिक से अधिक ज्ञान की पिपासा), सत्य (मन वचन कर्म से सत्य का पालन) और अक्रोध (क्रोध न करना); ये दस मानव धर्म के लक्षण हैं। धर्म के इन लक्षणों में भी मनुष्य के आचरणों को ही नियंत्रित रखने की बात कही गई है।

धर्म को कर्तव्य के रूप में भी स्वीकार किया गया है। उदाहरण के लिए पिता का धर्म, पुत्र का धर्म, पति का धर्म आदि वास्तव में पिता, पुत्र, पति के कर्तव्य ही हैं। जब भी कोई अपने कर्तव्य को पूरा नहीं करता, उसे धर्म से च्युत बताया जाता है। इसलिए वर्णाश्रम को भी धर्म कहा गया। अपने गुणों और स्वभाव के अनुसार व्यवहार तथा कर्म को अपनाना भी धर्म का पालन करना है।

धर्म को कर्तव्य के रूप में भी स्वीकार किया गया है। उदाहरण के लिए पिता का धर्म, पुत्र का धर्म, पति का धर्म आदि वास्तव में पिता, पुत्र, पति के कर्तव्य ही हैं। जब भी कोई अपने कर्तव्य को पूरा नहीं करता, उसे धर्म से च्युत बताया जाता है। इसलिए वर्णाश्रम को भी धर्म कहा गया। अपने गुणों और स्वभाव के अनुसार व्यवहार तथा कर्म को अपनाना भी धर्म का पालन करना है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सभी के धर्म बताए गए हैं यानी सभी के कर्तव्यों का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य यानी विद्यार्थी जीवन, गृहस्थ, वानप्रस्थ यानी सेवानिवृत्त जीवन तथा सन्यास यानी वीतराग जीवन के भी धर्म यानी कर्तव्य होते हैं। जड़ पदार्थ तथा पशु आदि प्राणी तो प्राकृतिक नियमों के वशीभूतहोने

के कारण स्व-स्व धर्मों का पालन करते हैं, मनुष्य ही बुद्धि की स्वाधीनता के कारण अधर्म में भी प्रवृत्त होता है, और इसलिए उसको धर्म में प्रवृत्त बनाए रखने के लिए विभिन्न नियमोपनियम बनाए जाते रहे हैं। इसीलिए कहा गया कि धर्मो रक्षति रक्षितः अर्थात् धर्म की रक्षा करने से वह हमारी रक्षा करता है। इसका तात्पर्य यही है कि यदि हम अपने धर्म का पालन करते हैं, तभी हम मनुष्य बनते हैं, अन्यथा हम मनुष्यपना खो बैठते हैं, यही हमारा नष्ट होना है।

मनुष्य का उद्भव और विकास

मनुष्य होने के बारे में यह चिंतन केवल भारतीय चिंतन का ही वैशिष्ट्य है। इस वैशिष्ट्य का कारण और आधार भारतीयों की सृष्टि रचना विषयक समझ और जानकारी है। भारतीय विद्वानों की स्थापना रही है कि मनुष्य इसी स्वरूप में पैदा हुआ और अपनी सृष्टि के प्रारंभिक काल में वह धर्मपूर्वक ही व्यवहार करता था। ज्यों ज्यों उसमें धार्मिकता का ह्रास होता गया, वह पशु होता गया। इसके ठीक विपरीत पश्चिमी यूरोपीय विचारकों जो स्वयं को विज्ञानी भी मानते हैं, का कहना है कि मनुष्य पहले निरा पशु ही था, पशु से विकसित होकर वह मनुष्य बना और शनैः शनैः आग, पहिए आदि का आविष्कार करते हुए आज की अवस्था में पहुँचा। उनका मत है कि इस विकास का मूल उसकी आवश्यकताएं और उनकी पूर्ति के लिए किए जाने वाले प्रयास थे। आधुनिक विकासवाद के अनुसार पूर्णतः शाकाहारी बंदर जब मनुष्य बना तो वह भक्ष्य-अभक्ष्य का भेद भूल गया और शाकाहार छोड़ कर मांसाहार करने लगा। हिस्ट्री ऑफ फूड में रिए टन्नाहिल लिखते हैं, ''वर्तमान में स्वीकृत मत के अनुसार आज से एक करोड़ से 40 लाख वर्ष पहले बंदरों का मनुष्य में रूपांतरण प्रारंभ हुआ जब पृथिवी की प्लेटों में खिसकाव प्रारंभ हुआ और जिससे पृथिवी की जलवायु में परिवर्तन होने लगा। उष्णकटिबंधीय इलाके ठंडे प्रदेशों में बदलने लगे, जंगल विरल होने लगे और हरियाली मौसम पर निर्भर होने लगी। पेड़ों पर रहने वाले बंदरों को वर्ष भर मिलने वाले फल आदि मिलने बंद हो गए, इससे वे मैदानी इलाकों में घूमने लगे जहाँ उन्हें न केवल कंदमूल और बीज मिले, बल्कि छिपकिलियां, साही, कछुए, गिलहरियां, छछुंदर, कीड़े और उनके अंडे मिले। और यहाँ से भोजन की तलाश में मानव इतिहास का प्रारंभ हुआ, जिसने बाद के अधिकांश विकास को बढ़ावा दिया।''

तात्पर्य यह है कि जहाँ भारतीय चिंतन अपनी प्राकृतिक आवश्यकताओं को भी किन्हीं नियमों में बांधने से मनुष्य का विकास मानता है, वहीं यूरोपीय चिंतन अपनी प्राकृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपनी मूल प्रकृति छोड़ने से मनुष्य का विकास मानता है। यहाँ प्रश्न यह नहीं है कि इनमें से वैज्ञानिक प्रक्रिया कौन सी है, यहाँ समझने की बात यह है कि चिंतन के इस मौलिक अंतर से मनुष्य जीवन के लक्ष्यों तथा उसके स्वभाव का विकास होता है। इसलिए जहाँ यूरोपीय तथा अमेरिका एवं आस्ट्रेलिया जैसे नवयूरोपीय देशों के लोग किसी भी प्रकार अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति को ही लक्ष्य मानते हैं, चाहे इससे समस्त पृथिवी का विनाश ही क्यों न हो जाए, वहीं हम भारतीय, प्रकृति तथा समस्त पशु-पक्षियों की रक्षा करते हुए अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने पर विश्वास रखते हैं। मनुष्य के होने संबंधी इस मौलिक अंतर के कारण ही दोनों विचारों में विकास की भिन्न अवधारणाओं का विकास हुआ।

यही कारण है कि व्यक्ति का चिंतन करते समय यूरोप उसे एक संसाधन के रूप में देखता है और भारतीय चिंतन एक चेतन सत्ता के रूप में। भारतीय वैदिक अवधारणा मनुष्य को आत्मा से जोड़ कर देखती है,

जबकि वर्तमान यूरोपीय विद्वान किसी सजीव और निर्जीव का भेद करते हुए भी वे आत्म तत्व को स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार मनुष्य अमीबा के समान कोशिकाओं से बना है और कोशिकाएं रसायनों की प्रतिक्रिया का परिणाम हैं। कुल मिला कर मनुष्य कुछेक रसायनों की प्रतिक्रिया से बना है और इसलिए आज के वैज्ञानिक प्रयोगशाला में मनुष्य के निर्माण के लिए प्रयासरत हैं। भारतीय चिंतन मनुष्य के शरीर को जड़ मानता है और उसमें आत्म तत्व के आने पर उसे सजीव कहता है। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य जड़ शरीर मात्र नहीं है। इस आत्म तत्व की परिभाषा भी भारतीय दर्शनों में दी हुई है। वहाँ कहा है, ***इच्छाद्वेषप्रयत्न सुखदुःखज्ञानान्यात्मनो*** लिंगमिति। अर्थात् इच्छा (पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषाः, द्वेष (दुःखकारक पदार्थों की अनिच्छा), प्रयत्न (सुख पाने और दुःख को समाप्त करने के प्रयास), सुख तथा दुःख का अनुभव करना, ज्ञान (अच्छे-बुरे में अंतर करना), ये आत्मा के लिंग यानी लक्षण हैं। इन लक्षणों के होने से ही समझा जाता है कि किसी में आत्मा है या नहीं। भारतीय दर्शन सृष्टि और काल के अनंत होने और दोनों में एक निरंतर प्रवाह की बात करता है और इस कारण केवल एक जन्म की नहीं, बल्कि यहाँ पुनर्जन्म की बात कही जाती है। शास्त्रों में चौरासी लाख योनियों की चर्चा आती है। मनुष्य का जन्म पाने के लिए इन सभी योनियों से होकर गुजरना होता है। यदि अच्छे काम किए तो फिर मनुष्य जन्म या फिर इन चौरासी लाख योनियों में से किसी अन्य योनी में जन्म मिलने की बात कही जाती है। इस प्रकार मनुष्य अपने प्रयासों में पूरी तरह स्वतंत्र नहीं माना गया और उसे आत्म तत्व के बंधनों में बांधा गया। दूसरी ओर, आत्म तत्व को नकारने के कारण यूरोपीय चिंतन में मनुष्य को एक जड़ तथा सबका स्वामी स्वीकार कर लिया गया। इस कारण उसका आचरण निरंकुश और उच्छृंखल होता गया। चिंतन के इस मौलिक अंतर ने ही कालांतर में व्यक्ति, परिवार और समाज संबंधी मान्यताओं, रचनाओं और व्यवहारों में भेद पैदा किया है।

परिवार और कुटुम्ब

परिवार भारत का वैशिष्ट्य माना जाता है। यह इसलिए कि परिवार के भाव का जो विस्तार भारतभूमि में हुआ, वह अन्यत्र कहीं और नहीं हुआ, बल्कि हुआ यह कि जो परिवार भारत में एक भाव था और जिसका विस्तार अपने कुटुम्ब से बढ़ कर संपूर्ण पृथिवी तक हुआ था, उस परिवार भाव को अन्यत्र विशेषकर यूरोप में एक संस्था माना और बना दिया गया और इस प्रकार वह एक व्यक्तिगत सत्ता का प्रतीक बनकर रह गया। भारत में परिवार कोई संस्था नहीं है और इसलिए माता-पिता कोई सत्ता नहीं है। मातृत्व और पितृत्व एक भाव है। इस भाव से ही परिवार का निर्माण होता है और इस भाव के कारण ही मनुष्य पशुओं से ऊपर उठता है। परिवार के बनते ही स्त्री स्त्री मात्र नहीं रह जाती और पुरुष पुरुष मात्र नहीं रह जाता। स्त्री माता, बहिन, बेटी, मामी, मौसी, चाची, फुआ, दादी, नानी आदि बन जाती है और पुरुष पिता, भाई, बेटा, मामा, मौसा, चाचा, फूफा, दादा, नाना आदि बन जाता है। तात्पर्य यह है कि स्त्री-पुरुष परिवार में अपनी सत्ता खो देते हैं और नया रूप धारण कर लेते हैं। यह नया रूप केवल भावात्मक ही होता है, इस पर भी यह वास्तविक रूप से अधिक सुंदर और प्रभावकारी होता है। इसलिए भारत में परिवार और समाज कभी भी पितृसत्तात्मक या मातृसत्तात्मक नहीं रहे और न ही आज हैं। वहाँ केवल दायित्वबोध की बात है। पिता के अपने दायित्व हैं और माता के अपने। दोनों केवल अपने दायित्वों का निर्वहन करते हैं और इसमें एक-दूसरे की सहायता करते हैं। परिवार में कैसा भाव हो, इसे समझाने के लिए अथर्ववेद में एक सूक्त 3/30 में परिवार में कैसे भाव हों, इसकी चर्चा की गई है। वह सूक्त इस प्रकार है।

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः। अन्योः अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥ अथर्व 3.30.1

हमारे हृदय में सौमनस्व हो, हमारे मन द्वेषरहित हो, हमारे मनों में एकीभाव हो। हम परस्पर उसी प्रकार स्नेह करें जैसे गौ अपने नवजात बछड़े से करती है। स्पष्ट है कि परिवार भाव का पहला अर्थ है स्नेह, प्रेम, मनों की एकता और आत्मीयता।

अनुव्रतः पितुः मात्रा भवतु संमना। जाया पत्ये मधुमती वाचं वदतु शान्तिवाम॥ अथर्व3.30.2

पुत्र पिता की आज्ञा का पालन करने वाला हो। माता के साथ समान मन वाला हो। स्त्री पति के लिए मधुर और शान्ति दायिनी वाणी बोले।

मा भ्राताभ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा। सम्यञ्चः सव्रताभूत्वा वाचं वदत भद्रया॥ अथर्व 3.30.3

भाई भाई से द्वेष न करे, बहिन बहिन से द्वेष न करे। सब उचित आचार विचार वाले और समान व्रतानुष्ठायी बन कर आपस में मधुर और कल्याणकारी वाणी बोलें।

येन देवा न वियन्ति ना च विद्विषते मिथः। तत् कृन्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञान पुरुषेभ्यः।। अथर्व 3.30.4

जिस कर्म के अनुष्ठान से मनुष्य देवत्व बुद्धि सम्पन्न हो कर एक दूसरे से परस्पर मिलजुल कर रहते हैं, आपस में द्वेष नहीं करते, उन के इस कर्म से ज्ञान प्राप्त कर के एक्यमत उत्पन्न होता है। इस मंत्र में साफ कहा जा रहा है कि परिवार में एक्य उत्पन्न करने के समस्त उपायों को अपनाया जाना चाहिए। भारतीय परंपरा में सहभोज, उत्सव आदि कुछ ऐसे ही आयोजन हैं, जिसमें पूरा परिवार एकत्र हुआ करता था।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मावि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।। अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनस्कृणोमि।। अथर्व 3.30.5

अपने-अपने कर्मों के प्रति सचेत होकर, बड़ों के आदर्शों से प्रेरित अपना-अपना उत्तरदायित्व समान रूप से वहन करते हुए साथ साथ चल कर, प्रत्येक के लिए प्रिय वचन बोलते हुए एक मन से साथ साथ चलने वाले बनो।

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागा समाने योक्त्रेसह वो युनज्मि। सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यारा नाभिमिवाभितः।। अथर्व 3.30.6

तुम्हारे जलपान के स्थान एक ही हों, तुमारा अन्न सेवन का स्थान एक हो। इस संसार में समान उत्तरदायित्व के वहन में तुम्हें एक जुए में जोड़ता हूं, जिसके पहियों के नाभि चक्र के अरों यानी कि लट्ठों की तरह एकजुट हो कर अग्नि से यज्ञादि शुभ कर्म करो। इस मंत्र में परस्पर के उत्तरदायित्व को समझने और परस्पर प्रेमभाव को बढ़ाने का उपाय बताया जा रहा है।

सध्रीचीनान्व संमनस्यकृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान। देवाइवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसौवो अस्तु।। अथर्व 3.30.7

इस उपदेश को ग्रहण कर के सभी लोग प्रतिदिन सायं-प्रातः की तरह सदैव एक दूसरे के सहयोगी बन कर, समान मन वाले हो कर समान रूप से भोग करते हुए मातृदेवों-पितृदेवों की तरह सौमनस्य से संसार की अमरता की रक्षा करो। यहां एक बार फिर वेद दो उदाहरणों से परिवार भाव को समझाते हैं। पहला उदाहरण प्रकृति से लिया गया है प्रातः और सायं का। जिस प्रकार प्रातः और सायं दोनो ही जीवन के लिए आवश्यक होते हैं और दोनो में परस्पर सामंजस्य होता है, वैसी ही पारस्परिकता और सामंजस्यता परिवार के सदस्यों में होनी चाहिए। दूसरा उदाहरण लौकिक है माता-पिता का। जिस प्रकार माता-पिता परस्पर स्नेह से रहते हैं, उसी प्रकार परिवार के सभी सदस्यों को परस्पर प्रेम से रहना चाहिए। परिवार के इस भाव का समस्त लोक और राष्ट्र में विस्तार करने के लिए कहा गया झ त्यजेदेकं कुलस्यार्थे, ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत, ग्रामं जनपदस्यार्थे, आत्मार्थे सर्वं त्यजेत अर्थात् व्यक्ति अपने अधिकारों को अपने कुल के हित में त्याग दे, कुल अपने अधिकारों को ग्राम के हित में त्याग दे, ग्राम जनपद के हित में अपने अधिकार त्याग दे और आत्मा की प्राप्ति के लिए सभी कुछ त्याग दे। इस त्यागने की भावना से ही मनुष्य मनुष्य बनता है। इस त्यागने की भावना का विकास करने के लिए ही वैदिक ऋषियों ने विभिन्न उपाय ढूंढे जिनमें से एक प्रमुख उपाय है संस्कार। मनुष्यता या संस्कृति का विकास करने के

लिए संस्कारों की आवश्यकता पड़ती है।

संस्कार और मनुष्य-निर्माण

वेदों का आदेश था मनुर्भव । इसको साकार करने के लिए भारतीय मनीषियों ने संस्कारों का विधान किया। संस्कार भारत की विशेषता हैं, एक ऐसी विशेषता जो अन्यत्र किसी भी देश या समाज में प्राप्त नहीं होती। मनु आदि ऋषियों ने सोलह संस्कारों की व्यवस्था दी है, जो मनुष्य के जन्म के पूर्व से ही प्रारंभ हो जाते हैं। कुछेक स्मृतियों में चौबीस संस्कार भी गिनाए गए हैं, परंतु मुख्यतः सोलह संस्कार ही सभी में स्वीकार किए गए हैं। ये सोलह संस्कार हैं– 1. गभार्धान, 2. पुंसवन, 3. सीमंतोन्नयन, 4. जातकर्म, 5. निष्क्रमण, 6. नामकरण, 7. अन्नप्राशन, 8. चूड़ाकर्म, 9. कर्णवेध, 10. उपनयन, 11. वेदारंभ, 12. समावर्तन, 13. विवाह, 14. वानप्रस्थ, 15. सन्यास, 16. अन्त्येष्टि। इस सूची में कुछ परिवर्तन भी मिलता है। कुछ लोग वानप्रस्थ और सन्यास को केवल आश्रम मात्र मानते हैं, संस्कार नहीं। वे वेदारंभ के बाद केशांत, समावर्तन, विवाह, उसके पश्चात विवाहग्निस्थापना और अन्त्येष्टि, इस प्रकार सोलह की गणना संपन्न करते हैं।

यह हम देख सकते हैं कि अधिकांश संस्कार यानी कि सोलह में से ग्यारह गर्भावस्था तथा बालपन में ही संपन्न हो जाते हैं। चूँकि सीखने-सिखाने की प्रक्रिया बचपन में ही सर्वाधिक तीव्र होती है, इसलिए अधिकाधिक संस्कार इसी आयु में कराए जाते हैं। पहले तीन संस्कार तो माता-पिता के आचरण और व्यवहार को ठीक रखने के लिए हैं, ताकि उनका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहे और श्रेष्ठ आत्मा का आ''ान किया जा सके। गभार्धान संस्कार को करने के लिए पति-पत्नी को पहले शारीरिक और मानसिक शुद्धि करनी होती है। आयुर्वेदिक पंचकर्म तथा औषधिसेवन से शरीर की शुद्धि और पुष्टि की जाती है। ब्रह्मचर्य और संयमपूर्वक योग-ध्यान करते हुए जीने से मानसिक शुद्धि होती है। भारतीय इतिहास में ऐसे ढेर सारे उदाहरण मिलते हैं, जिनमें अच्छी संतान पाने के लिए दंपतियों ने वर्षभर पूर्व तैयारी की और उसके बाद उन्हें श्रेष्ठ संतान की प्राप्ति हुई। वास्तव में वासनायुक्त

संभोग भारतीय ऋषियों ने कभी भी उपयुक्त नहीं माना, उन्होंने हमेशा इसे प्रजोत्पत्ति के निमित्त ही माना।

गर्भधारण के बाद दूसरा संस्कार है पुंसवन। पुंसवन का सामान्य अर्थ आज पुत्रप्राप्ति से लिया जाता है, परंतु अष्टाध्यायी के सूत्र स्त्री पुंवाच्च और पुमान स्त्रिया से पुं से स्त्री-पुरुष दोनों का ग्रहण होता है। इसलिए पुंसवन संस्कार गर्भिणी स्त्री और गर्भस्थ शिशु के स्वास्थ्य और मानसिक विकास के लिए किया जाता है। यह संस्कार गर्भधारण के चालीसवें दिन किया जाता है। इसका एक निहितार्थ यह भी है कि चालीसवें दिन के बाद ही स्त्री दोहद होती है यानी गर्भस्थ शिशु के हृदय में धड़कन आती है। इन संस्कारों के द्वारा गर्भस्थ शिशु में डीएनए और जेनेटिक परिवर्तन करके मनचाही संतान पाई जा सकती है। भारतीय इतिहास में श्रीराम, पाँचो पांडव, अभिमन्यु आदि इसके उदाहरण हैं। इसकी वैज्ञानिकता पर देश में अनेक न्यूरोलॉजिस्टों ने काम किया है और उन्होंने आधुनिक विज्ञान की पदावली में भी इसे सही साबित किया है। इसके आधार पर श्रेष्ठ संतान पाने के देश में कई प्रकल्प चलाए जा रहे हैं।

तीसरा संस्कार सीमन्तोन्नयन भी गर्भिणी और गर्भस्थ शिशु के शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य के लिए किया जाता है। सीमन्तोन्नय संस्कार में गर्भिणी स्त्री को प्रसन्न करने के उपाय किये जाते हैं। अशुभ तथा अप्रिय ध्वनियों तथा संपर्कों से गर्भिणी स्त्री तथा गर्भस्थ शिशु को बचाना ही इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य है। शिशु के जन्म से जुड़ा चौथा संस्कार है जातकर्म। इस संस्कार में शिशु के स्वस्थ जन्म के उपाय किए जाते हैं। उपयुक्त वातावरण (कम प्रकाश, न्यूनतम ध्वनियां, प्रशिक्षित दाइयों की उपस्थिति आदि) में शिशु को जन्म देना, पिता द्वारा संक्रमणरहित तरीके से उसकी नाल को काटना और इसप्रकार जन्म लिए शिशु को माता द्वारा स्तनपान कराने का प्रारंभ, सुवर्णप्रासन द्वारा उसका स्वास्थ्य टीकाकरण और पिता द्वारा शिशु के कान में धीमे स्वर में वैदिक मंत्रों के उच्चारण द्वारा उसके पूर्वसंस्कारों का शोधन आदि प्रक्रियाएं इस संस्कार में संपन्न की जाती हैं। इस संस्कार में शामिल चिकित्सकीय कर्म भारतीय ऋषियों की उच्चतम वैज्ञानिक दृष्टि को दशार्ते हैं। सुवर्णप्राशन नैनोतकनीकी का एक उत्तम उदाहरण है तो वैदिक मंत्रोच्चार द्वारा ध्वनिसंस्कार ध्वनि ऊर्जा के प्रयोग का उदाहरण है। जातकर्म में ही प्रसूति गृह की शुद्धि और प्रसूता स्त्री को संक्रमण से बचाने के लिए दैनिक प्रातःसायं हवन का भी विधान है।

पाँचवाँ निष्क्रमण संस्कार भारतीय चिंतन की वैज्ञानिकता का एक और बड़ा प्रमाण है। भारतीय परंपरा में जन्म के बाद तुरंत शिशु को बाहर नहीं निकाला जाता था। नवजात शिशु बाहर के शुद्ध-अशुद्ध वातावरण, अच्छी-बुरी ध्वनियों, दृष्टियों व संपर्कों, सूर्य-प्रकाश आदि के प्रति काफी संवेदनशील होता है, इसलिए उसे प्रसूति गृह से बाहर निकालना भी भारतीय परंपरा में एक संस्कार है। इसमें पहली बार शिशु को बा' जगत से संपर्क करवाया जाता है और उस समय माता उसे गोद में लेकर बाहर आती है और उसे यज्ञशाला में हवन यज्ञ में सहभागी किया जाता है। इस संस्कार का फल शिशु की आयुवृद्धि है (निष्क्रमणादायुषोवृद्धिः। छठा संस्कार है नामकरण। भारतीय ऋषियों ने नामकरण को एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया माना है। काम भिखारी का और नाम धनपति, जैसे विरोधाभासी प्रसंग न हों, इसके लिए उन्होंने शिशु के नामकरण की व्यवस्था दी। इस संस्कार की एक औपचारिकता यह भी है कि एक अनूठी परीक्षा द्वारा भावी वृत्ति–व्यवसाय के प्रति बालक का क्या-कुछ रुझान होगा, इसका निर्णय किया जाता है। इस हेतु उसके समक्ष कलम, पुस्तक, बही, बाट-बटखरे, तराजू, खुरपी, औजार, हथियार आदि कई उपयोगी पदार्थ फैलाकर रख दिए जाते हैं। तब देखा जाता है कि उनमें से किस वस्तु को वह शिशु छू लेता अथवा उठा लेता है? उदाहरणार्थ, यदि उसने कलम को छू दिया या उठाया, तो इससे अनुमान किया जाता है कि वह जीवन में लेखनी से संबंधित वृत्ति-व्यवसाय अपनाएगा! यदि औजार को छू लिया, तो तकनीकी कारीगर या मिस्त्री आदि होग । यदि बाट बटखरे या तराजू छू ले, तो

आज यह भ्रम व्याप्त है कि उपनयन संस्कार केवल द्विजों का ही किया जाता है, शूद्रों का नहीं। लेकिन मनुस्मृति में किए गए उल्लेख से स्पष्ट होता है कि बालकों का वर्णनिर्धारण नहीं होता। वहाँ यह कहा गया है कि जो जिस वर्ण में जाने का इच्छुक हो, उसका उस वर्ण हेतु उपनयन किया जाना चाहिए - मनु 2/36। साथ ही मनु ने यह भी कहा है कि जब तक बालक का वैदिक संस्कार नहीं किया जाता, तब तक वह शूद्र ही होता है– शूद्रेण हि समस्तावद् यावद् वेदे न जायते (मनु 2/172)। इससे यह स्पष्ट है कि बालकों का वर्ण शिक्षण के उपरांत ही निश्चित हुआ करता था।

होगा व्यापारी। यदि हथियार उठा ले या छू ले, तो बनेगा सैनिक। और यदि धर्मग्रंथ का स्पर्श करे, तो उसका रुझान धार्मिक वृत्ति का होगा।

सातवाँ संस्कार कर्णवेध मूलतः तो इस मान्यता के आधार पर किया जाता रहा कि कान छिदवाने से पुरूष का पुरुषत्व तथा नारी का स्त्रीत्व पूर्णरूपेण विकसित हो जाया करता है। कान के छिदने और उसमें कुंडल पहनने से होने वाले खिंचावों के कारण बालक/बालिकाओं की मेधा व स्मृति शक्ति भी बढ़ती है। इसलिये पहले स्त्री पुरूष दोनों के कान छेदे जाते थे, क्योंकि तब दोनों ही कानों में कुंडल आदि आभूषण धारण किया करते थे। परन्तु बाद में जब कानों में कर्णफूल, कुंडल, झुमका आदि आभूषण पहनने का रिवाज बढ़ा, तो धार्मिक रूप की बजाय इस संस्कार के श्रृंगारपरक आयाम ने अधिक महत्व प्राप्त कर लिया। इसलिए अब कानों में गहने केवल स्त्रियाँ ही पहनती है। अतः बालिकाओं के ही कर्णवेध संस्कार की परिपाटी शेष रह गई है। आठवाँ अन्नप्राशन संस्कार है। अन्न को भारतीय दर्शन में ब्रह्म ही माना गया है (अन्नं ब्रह्मेति झ्र तैत्तीरियोपनिषद भृगु वल्ली, द्वितीय अनुवाक)। इसलिए पहली बार अन्नब्रह्म को ग्रहण करना भी एक संस्कार ही है। शिशु प्रारंभ से ही अन्न का महत्व समझे और उसको ग्रहण करने का तरीका सीखे, इसके लिए यह संस्कार किया जाता है। इसका स्वास्थ्य की दृष्टि से भी काफी महत्व है। यह संस्कार तभी आयोजित हुआ करता है, जब बच्चे के मुंह में कुछ दांत निकल चुके होते हैं। नौवाँ संस्कार है चूडाकरण (मुंडन या चौल संस्कार)। प्राचीन स्मृतिग्रंथों में इस संस्कार को वपनक्रिया कहा गया है। यह मान्यता है कि शिशु जो केश मां के गर्भाशय से लेकर आता है, वे अपवित्र होते हैं। अतएव क्षौर कर्म द्वारा कम से कम एक बार तो मुंडन द्वारा उन्हें हटा देना अत्यन्त जरूरी है।

नौवाँ संस्कार है उपनयन। अब तक वर्णित नौ संस्कार बालक द्वारा किशोरावस्था में प्रवेश करने से पूर्व के थे। अब उसकी जीवनयात्रा में वह महत्वपूर्ण मोड़ आता है, जिसकी संधि पर एक महत्वपूर्ण संस्कार द्वारा उसे परिष्कृत किया जाता है। इसके फलस्वरूप उसका मानो दूसरा जन्म हो जाता है, इसलिए वह अब द्विज कहलाने लगता है। लौकिक शब्दावली में इसे ही यज्ञोपवीत संस्कार या "जनेऊ" भी कहते है। इस संस्कार के बाद वह गुरुकुल में रह कर शिक्षा पूरी करने तक ब्रहाचर्याश्रम का ही प्रतिपालन करता था। आज यह भ्रम व्याप्त है कि उपनयन संस्कार केवल द्विजों का ही किया जाता है, शूद्रों का नहीं। लेकिन मनुस्मृति में किए गए उल्लेख से स्पष्ट होता है कि बालकों का वर्णनिर्धारण नहीं होता। वहाँ यह कहा गया है कि जो जिस वर्ण में जाने का इच्छुक हो, उसका उस वर्ण हेतु उपनयन किया जाना चाहिए झ्र मनु 2/36। साथ ही मनु ने यह भी कहा है कि जब तक बालक का वैदिक संस्कार नहीं किया जाता, तब तक वह शूद्र ही होता है झ्र शूद्रेण हि समस्तावद् यावद् वेदे न जायते (मनु 2/172)। इससे यह स्पष्ट है कि बालकों का वर्ण शिक्षण के उपरांत ही निश्चित हुआ करता था। इसके अतिरिक्त हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि प्राचीन काल में केवल वेदाभ्यास के गुरुकुलों के लिए ही यह मयार्दा बनाई गई थी। ग्यारहवाँ संस्कार है वेदारंभ। इस संस्कार को सामान्यतः श्रावणी उपाकर्म के दिन यानी श्रावण पूर्णिमा को किया जाता था। इस संस्कार की स्मृति आज रक्षाबंधन पर्व में देखी जा सकती है। रक्षाबंधन वास्तव में गुरु शिष्य का पर्व था जिसे भ्रांतिवश आज भाई-बहन के पर्व के रूप में मनाया जाने लगा है। बारहवाँ समावर्तन गुरुकुलकालीन आखिरी संस्कार था। इसे वेदस्नान के नाम से भी पुकारा गया है। इसे समावर्तन इसलिए कहा जाता है कि इसके द्वारा शिक्षार्थी को समावर्तित यानि वापस घर भेजा जाता है।

तेरहवाँ संस्कार है विवाह संस्कार। विवाह मनुष्य को पशु से ऊपर उठाकर मनुष्यत्व से युक्त करने की एक विधा है। विवाह संस्कार की प्रक्रियाओं को अगर हम देखें तो पाएंगे कि वैदिक विवाह संस्कार जैसा वैज्ञानिक और व्यवहारिक विधान विश्व के किसी भी मजहब, समुदाय तथा देश की विवाह प्रथा में नहीं हैं। उदाहरण के लिए सप्तपदी यानी सात वचन हैं। इन सात वचनों में स्त्री-पुरुष केवल एक-दूसरे के प्रति अपने दायित्वों की बात नहीं करते हैं, बल्कि परिवार और लोक के प्रति दायित्वों के निर्वहन करने में एक-दूसरे का साथ देने-लेने का भी वचन देते हैं। वे संकल्प लेते हैं कि यज्ञ यानी कि लोककल्याण के कार्यों में मिल कर लगेंगे। ऐसे ही एक विधान में वे ध्रुव तारे को देख कर संकल्प करते हैं कि वे आजीवन इस विवाह व्रत का पालन करेंगे। इसे कभी भंग नहीं करेंगे। एक और विधान में वर वधु के बालों के जूड़े को खोलता है और मंत्र पढ़ता हुआ कहता है कि वह उसे विवाहपूर्व के सभी बंधनों से मुक्त कर रहा है और फिर से जूड़े को बांधते हुए मंत्र पढ़ता हुआ कहता है कि वह उसे नए बंधनों में बांध रहा है। विवाह की इन वैदिक प्रक्रियाओं से यह पता चलता है कि विवाह केवल स्त्री-पुरुष

के पारस्परिक संबंधों के लिए नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक व्रत है। इसलिए भारतीय परंपरा में कभी भी तलाक जैसी कोई व्यवस्था नहीं पनप पाई। पति-पत्नी में अलगाव तो हुआ, परंतु वह अलगाव केवल शारीरिक था, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक स्तर पर वे विवाहित ही रहते थे। एक-दूसरे की प्रतीक्षा में ही रहते थे। यह वैवाहिक आदर्श की पराकाष्ठा कही जा सकती है। भारत के इतिहास में ऐसा उदाहरण ढूंढने से भी नहीं मिलेगा, जिसमें किसी ने विवाह-विच्छेद करके दूसरा विवाह कर लिया हो।

विवाह में एक और महत्वपूर्ण आयाम है गोत्र का। भारतीय मनीषियों ने सपिंड और सगोत्र विवाह को स्पष्टतः मना किया है। मनु स्मृति कहती है सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते। समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदन।।

तात्पर्य यह है कि सगापन तो सातवीं पीढी में समाप्त हो जाता है. और घनिष्टपन जन्म और नाम के ज्ञात ना रहने पर छूट जाता है। आधुनिक जेनेटिक अनुवांशिक विज्ञान के अनुसार inbreeding multiplier अंतःप्रजनन से उत्पन्न विकारों की सम्भावना का गुणांक इकाई से यानी एक से कम सातवीं पीढ़ी में जा कर ही होता है। गणित के एक समीकरण के अनुसार, अंतःप्रजनन विकार गुणांक = 0.5^N x 100 (N पीढी का सूचक है)। इस प्रकार पहली पीढ़ी में N=1, से यह गुणांक 50 होगा, छठी पीढ़ी में N=6 से यह गुणांक 1.58 हो कर भी इकाई से बड़ा रहता है। सातवीं पीढ़ी में जा कर N=7 होने पर ही यह अंतःप्रजनन गुणांक 0.78 हो कर इकाई यानी एक से कम हो जाता है। मतलब साफ है कि सातवीं पीढी के बाद ही अनुवांशिक रोग होने की सम्भावना समाप्त होती है। यह एक अत्यंत विस्मयकारी वैज्ञानिक सत्य है जिसे हमारे ऋषियो ने सपिण्ड विवाह का निषेध करके बताया था। सपिंड को ही रोकने के लिए सगोत्र विवाह का भी निषेध किया गया था। इसका वैज्ञानिक कारण यह है कि पुरुष में एक्स और वाई दोनों गुणसूत्र पाए जाते हैं, जबकि स्त्रियों में केवल एक्स गुणसूत्र ही होते हैं। वाई गुणसूत्र कुल आठ प्रकार के होते हैं और गोत्र प्रवर भी आठ ऋषियों से ही संबंधित हैं जो कि इन आठ विभिन्न वाई गुणसूत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अब यदि सगोत्र विवाह हो तो समान आनुवांशिक प्रभावों के कारण वाई गुणसूत्र की क्षमता कम होती जाएगी और उसके कारण शारीरिक रोग, अल्पायु, बुद्धिमंदता, रोग निरोधक क्षमता की कमी, अपंगता, विकलांगता आदि विकार पैदा होने की संभावना बढ़ जाएगी। भारतीय परंपरा में सगोत्र विवाह न होने का यह भी एक परिणाम है कि सम्पूर्ण विश्व में भारतीय सबसे अधिक बुद्धिमान माने जाते हैं।

विवाह यज्ञ के प्रतीक थे। विवाह करके दंपत्ति को लोक की वृद्धि में लगना होता था। लोकहितार्थ कार्य करने होते थे। इसीलिए गृहस्थ आश्रम को मनु ने सभी आश्रमों का पालक कहा। अन्य तीन आश्रमस्थ ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और सन्यासी, तीनों का पालन करना गृहस्थ का ही कर्तव्य था। इस यज्ञभाव के कारण विवाह और परिवार कभी भी न तो संस्था बने और न ही वासनापूर्ति के साधन। भारतीय मनीषियों ने विवाह में स्त्री को अधिक महत्ता प्रदान की। विवाह के बाद जब स्त्री ससुराल आती है तो उसे आशीर्वाद दिया जाता है झ सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवृषु॥ अर्थात् हे वधू ! तू श्वसुर, सास, ननद और देवरों की साम्राज्ञी (महारानी) बनो। इसके प्रतीक के रूप में वर्तमान में कई स्थानों पर प्रवेशद्वार पर अन्न से भरे बर्तन को वधु द्वारा पैरों की ठोकर से लुढ़काने की प्रथा है। यह प्रथा उसके स्वामित्व को ही चिह्नित करती है। वैदिक विवाह पद्धति की यह विशेषता विश्व में अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। मनुस्मृति में वधु को प्रसन्न रखने से ही सुख-समृद्धि मिलने की बात कही गई है। वहाँ कहा है

पितृभिर्भ्ररतरिभिश्चैताः पतिर्भिदेवरैस्तथा, पूज्या भूषयीतव्याश्च बहूकल्यांमीप्सुभि।।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्तेरमन्ते तत्र देवताः, यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशुतत्कुलम, न शोचन्ति तू यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा।।

जामयो यानि गेहानीशपन्त्यप्रतिपुजिताः, तानीकृत्याहतानीव विनश्यन्ति समंततः।।

तसमा देता सदा पूज्या भूषणा च्छादनाशनैः , भूतिका मैनररैर्नित्यं सत्कारेशुत्सवेशु च।।

संतुष्टो भार्यया भर्ता भतर्र भार्या तथैव च, यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वे ध्रुवम्।

- पिता, भाई, पति, देवर को चाहिए कि अपनी कन्या, बहन, स्त्री और भाभी आदि स्त्रियों को सदा यथायोग्य मधुर भाषण, भोजन, वस्त्र, आभूषण से प्रसन्न रखे। जिनको कल्याण की इच्छा हो वह स्त्रियो को कभी क्लेश न देवे।
- जिस कुल में नारियों का सत्कार होता है, उस कुल में दिव्य गुण, दिव्य भोग और उत्तम सन्तान होते है और जिस कुल मे स्त्रियो का सत्कार नही होता है, वहां जानिये उनकी सब क्रिया निष्फल रहती।
- जिस कुल मे स्त्रियाँ अपने-अपने पुरुषो से उनके नीच आचरण के कारण शोकातुर रहती हैं, वह कुल शीघ्र नाश को प्राप्त हो जाता है, और जिस कुल मे स्त्री जन पुरुषो के उत्तम आचरण

से प्रसन्न रहती हैं, वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है।

- जिस कुल व घरो मे [नारी] को सत्कार को न प्राप्त होकर जो गृहस्थो को शाप देती है, वे कुल और गृहस्थ जैसे विष देकर बहुतो को एक बार नाश कर देवें, चारो ओर से नष्ट भ्रष्ट हो जाते है।
- इस कारण ऐश्वर्य की इच्छा रखने वाले पुरुषों को योग्य है कि इन स्त्रियों के अवसरो और उत्सवों मे भूषण, वस्त्र, खानपान आदि से सदा सत्कारयुक्त प्रसन्न रखे।
- जिस कुल मे पत्नी से प्रसन्न पति और पति से सदा प्रसन्न पत्नी रहती है, उसी कुल मे निश्चित कल्याण होता है और दोनो परस्पर सदा अप्रसन्न रहे तो उस कुल मे नित्य कलह वास करता है। परिवार की धुरी माता को माना गया था।

तैत्तिरियोपनिषद् में कहा है - अथाधिप्रजम्। माता पूर्वरूपम्। पितोत्तरस्यम्। प्रजासन्धिः। प्रजननं संधानम्। तात्पर्य है कि माता प्रजा की मूल है और उसके बाद ही पिता का स्थान आता है। इन दोनों की सन्धि यानी जुड़ाव प्रजा यानि संतान से होती है। इस सन्धि का लक्ष्य प्रजनन ही है। तैत्तिरियोपनिषद् ने इस बात को आगे समझाते हुए कहा झ्र मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। माता और पिता देवस्वरुप हैं। इसी बात को शतपथ ब्राह्मण में कहा है मातृमानपितृमानआचार्यवान पुरुषो वेद। यानी मनुष्य के तीन गुरु हैं। पहली गुरु माता है, दूसरा पिता और तीसरा गुरु आचार्य है। इसप्रकार शतपथ ब्राह्मण में भी माता को पहला स्थान दिया गया है।

गृहस्थ यानी परिवार के कर्तव्यों को यदि हम देखें तो पाएंगे कि उसमें पूरी सृष्टि का पालन करने का भाव छिपा होता है। इसका पहला उद्देश्य है प्रजोत्पत्ति यानी संतान उत्पन्न करना। दूसरा उद्देश्य है गृहनिर्माण। गृहनिर्माण का अर्थ केवल अपने आवास का प्रवंध करना नहीं है। अतिथियों से लेकर पशु-पक्षियों तक के रहने की व्यवस्था करना ही इसका अभीष्ट है। इसलिए प्राचीन काल से ही धनवान गृहस्थों द्वारा अतिथिशालाएं, पांथागार, धर्मशालाएं, मंदिर आदि बनवाने का इतिहास मिलता है। तीसरा उद्देश्य है सृष्टि का पालन। इसके लिए वह पंचमहायज्ञ करता है। मनुस्मृति में कहा है-

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। होमो दैवो बलिभौंतो नृयज्ञोतिथिपूजनम्।। वेदादि शास्त्रों का अध्ययन ब्रह्मयज्ञ, तर्पण पितृयज्ञ, हवन देवयज्ञ, पंचबलि भूतयज्ञ और अतिथियों का पूजन सत्कार अतिथियज्ञ कहा जाता है। इसप्रकार पहला महायज्ञ है स्वाध्याय। दूसरा यज्ञ है माता-पिता आदि घर के समस्त बुजुर्गों की सेवा। तीसरा महायज्ञ है दैनिक अग्निहोत्र जो वातावरण की शुद्धि के लिए किया जाता है। चौथा महायज्ञ है बलिवैश्वदेव जो पशु-पक्षी, कीट-पतंगों आदि समस्त प्राणी सृष्टि की पालना के लिए किया जाता है। पांचवाँ और अंतिम महायज्ञ है नृयज्ञ जिसमें घर आए किसी भी अतिथि यानी परिचित-अपरिचित व्यक्ति को भोजनादि से सत्कार किया जाता है। इस प्रकार एक गृहस्थ को जड़-चेतन सारी सृष्टि की चिंता करनी होती है। इसके लिए वह विवाह का व्रत धारण करता है। इसके लिए वह प्रजा की अभिवृद्धि करता है। इसके लिए वह शतहस्त समाहर यानी सौ हाथों से कमाता है और सहस्त्रहस्त संकिरः के आदेश के अनुसार हजार हाथों से बाँट देता है।

इन पाँच महायज्ञों में चार ऋणों को उतारा जाता है। भारतीय मनीषियों का मानना था कि मनुष्य अपने ऊपर चार ऋण लेकर पैदा होता है। ये चार ऋण हैं झ्र देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण और मनुष्यऋण। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार त्रऋणं ह वै जायते योऽस्ति। स जायमानरएव देवेभ्यरऋषिभ्यः पितृभ्यो मनुष्येभ्यः। सभी मनुष्य ऋण रूप से ही उत्पन्न होते हैं। वह देवों, ऋषियों, पितरों और मनुष्यों के ऋण से उत्पन्न होता है। यहाँ पर स्पष्ट रूप से चार ऋणों की चर्चा की गई है। इन चार ऋणों से मुक्ति ही वास्तविक मोक्ष है जिसकी चर्चा चार पुरुषार्थों में की गई है। शतपथ ने इसके बाद इन ऋणों से मुक्ति के लिए उपाय भी बताए हैं। वे उपाय यही पंचमहायज्ञ हैं। इन ऋणों से मुक्ति ही मनुष्य का ध्येय है और इसके लिए ही वह वेदों में वर्णित तीन पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम को ग्रहण करता है। इसके परिणामस्वरूप उसे मोक्ष यानी मुक्ति की प्राप्ति होती है। इसलिए वेद स्पष्ट रूप से कहते हैं झ्र कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजिविच्छेतसमाः। एवं त्वयि नान्यथेतोरस्ति, न कर्मलिप्यते नरे।। यानी कर्म करते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा रखो, यही एक मात्र मार्ग जिससे मनुष्य कर्मों में लिप्त नहीं होता। इस तरह परिवार में रहने वाले इन संस्कारों तथा पंचमहायज्ञों के माध्यम से समावेशी आचरण सीखते हैं और उसका विस्तार फिर लोक में करते हैं।

(भारतीय धरोहर पत्रिका के कार्यकारी संपादक और सभ्यता अध्ययन केंद्र, दिल्ली के निदेशक हैं।)

स्वावलंबन, स्वाभिमान और विकास के अन्तर-संबंध

डॉ. दलीप कुमार
श्री अंबिका फाउण्डेशन, कोपा कलां, पटना बिहार

स्वावलंबन, स्वाभिमान और विकास के तीन सोपान हैं, जिसके आंतरिक संबंध हैं, जिसके सहारे मनुष्य सफलता के शिखर पर पहुंचकर एक शांत, सुखद और संतुष्ट जीवन जी सकता है। स्वावलंबन का शाब्दिक अर्थ है अपने आप पर आश्रित होना। अर्थात, इस सांसारिक जीवन में परमात्मा प्रदत्त शारीरिक एवं मानसिक क्षमता का समुचित उपयोग करते हुए स्वाभिमान के साथ विकास करना और अच्छी जिंदगी जीना।

किसी देश, समाज या व्यक्ति के विकास के लिये आत्मनिर्भर होना जरूरी है। स्वाभिमान के साथ जीवन जीने का एक अलग ही आनंद है। स्वाभिमान का अर्थ है अपने आप पर विश्वास करना, आत्म सम्मान का भाव होना और अपनी आत्मा द्वारा सुकर्म एवं कुकर्म के अंतर को समझते हुए आचरण करना। स्वाभिमान का अर्थ अपने धन-बल एवं ज्ञान-बल या पद एवं सत्ता पर अभिमान करना नहीं होता। इसका वास्तविक अर्थ है सत्य से प्रेम करना, दुर्विचार से बचना, दुष्कर्म से दूर रहना तथा अपने श्रेष्ठ कर्मों से समाज में सम्मान अर्जित करना। देश की आर्थिक स्वतंत्रता, स्वावलंबन, उसके सम्मान और स्वाभिमान की रक्षा करना हर भारतीय का कर्तव्य है। भारतीय नागरिक, चाहे वह किसी भी समाज, धर्म, जाति का हो, देश के स्वाभिमान की रक्षा करना उसका नैतिक दायित्व है। कर्तव्यनिष्ठा से ही व्यक्ति का आत्मविश्वास और स्वाभिमान दोनों जागृत होता है। किसी देश की स्वतंत्रता तथा उसके स्वाभिमान को बनाये रखने के लिये देश तथा समाज का आत्मनिर्भर और स्वावलंबी होना आवश्यक है। इसके अभाव में देश, समाज या व्यक्ति की अपनी पहचान समाप्त हो जाती है। स्वावलंबी नागरिक का होना, स्वाभिमानी एवं शक्तिशाली भारत के लिये आवश्यक है कि हर भारतीय सच्ची निष्ठा एवं लगन के साथ अपने अधिकार एवं कर्तव्य का पालन करे। व्यक्ति दृढ़ आत्मविश्वास से समस्त इतिहास की दिशा बदल सकता है। जो व्यक्ति अपने कर्म पर भरोसा करता है, वह परजीवी, आलसी और कायर नहीं हो सकता है। स्वावलंबी मनुष्य अपनी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति ही नहीं करते हैं, बल्कि समाज में दूसरों की भी यथायोग्य मदद करने में सक्षम होते हैं।

स्वावलंबन से कई मानवीय गुणों का विकास होता है। इससे सहयोग, निर्णय क्षमता, आपसी प्रेम, भाईचारा, आत्मज्ञान और आत्मसम्मान जैसे मानवीय गुणों में वृद्धि होती है और इससे हमारे व्यक्तित्व का विकास हो पाता है। यह हमें सतत कर्मशील बने रहने की प्रेरणा और और ऊर्जा प्रदान करता है। इससे श्रम की महत्ता बढ़ती है। ठीक ही कहा गया है कि बिना शारीरिक श्रम के अर्जित धन चोरी है। प्राचीन भारतीय गुरुकुल में अपने ब्रह्मचर्य जीवन में प्रत्येक छात्र को अपना काम स्वयं करना होता था, भले ही वे अयोध्या के राजकुमार श्रीराम हों या द्वारिका के बालक श्रीकृष्ण। हमारे यहां पद्धति थी कि गुरुकुल में रहने वाला प्रत्येक विद्यार्थी, चाहे वह राजा का पुत्र हो या गरीब का, गांव में जाकर भिक्षा मांगकर लाता था। प्राचीन भारतीय गुरुकुल पद्धति आत्मज्ञान और आत्मसम्मान प्रदान करने वाली शिक्षा पद्धति थी, जो गुरुकुल के विद्यार्थियों को स्वावलंबी और स्वाभिमानी बनाती थी। स्वावलंबन से स्वयं के प्रति विश्वास बढ़ता है, व्यक्तित्व में संतुलन लाता है और यह स्वालंबन की ओर अग्रसर करता है। मानव विकास के इतिहास में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा के अभाव में व्यक्ति प्रताड़ित एवं असहाय जीवन व्यतीत करता है। हर छोटे-बड़े कार्य के लिये उसे दूसरे पर आश्रित रहना पड़ता है। न तो वह अपना पूर्णतः विकास कर पाता है और न ही परिवार का भलीभांति लालन-पालन कर पाता है।

विद्यालय शिक्षा के संबंध में शिक्षा आयोग (1964-66) का कथन

है, ''भारत का भाग्य निर्माण उसकी कक्षाओं में हो रहा है। शिक्षा द्वारा ही व्यक्ति के चरित्र, व्यवहार तथा चिंतन में बदलाव लाया जा सकता है। बुनियादी शिक्षा का प्रारंभ घर और पाठशाला, प्राथमिक, मध्य एवं उच्च विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्व विद्यालय तक होता है और ये सभी शिक्षा के मंदिर हैं।'' गांधी जी के ही शब्दों में, ''सच्ची शिक्षा वह है जो बच्चों के अध्यात्मिक, बौद्धिक एवं शारीरिक संकायों को

उनके अंदर से बाहर की ओर प्रकट करती है तथा उत्तेजित करती है।''

स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा को जन साधारण में जागृति उत्पन्न करने का सर्वोत्तम साधन माना है। भारतीय संस्कृति के आदर्श महापुरुषों बंह्मर्षि परशुराम, व्यास, वाल्मीकि, पतंजलि, कश्यप, अत्रि, भारद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वशिष्ठ आदि महर्षियों ने अपने सम्मान के बल से भारतीय संस्कृति को उत्कर्षता प्रदान की। हमारे यहां विचारक, चिंतक और अध्यात्मिक महापुरुष समय-समय पर हुए जो स्वावलंबन और स्वाभिमान के पाठ से अवगत कराते रहे।

ब्रह्मर्षि परशुराम ने स्वाभिमान व सम्मान की रक्षा के लिये राजा सहस्त्रबाहु को मारा। सहस्त्रबाहु भारत को नष्ट करने तथा सांस्कृतिक धरोहर को बर्बाद करने के निये अफगानिस्तान से भारत आये थे। सहस्त्रबाहु केर्ाि कये कारनामें ाके वह सहन नहीं कर सके और परशु अठाकर परशुराम ने सहस्त्रबाहु की जीवनलीला समाप्त की। इसके साथ ही देशद्रोही, आतंकवादी, अत्याचारी, व्यभिचारी तथा दुष्ट लोगों को समाप्त कर सदाचारी, स्वाभिमानी ब्रह्मज्ञानियों को सत्ता दिलायी। भारत को सर्वप्रधम अखंड बनाने वाले ब्रह्मर्षि परशुराम ही थे, जिनमें स्वाभिमान कूट-कूटकर भरा था।

जगद्गुरु शंराचार्य ने आत्मविश्वास के साथ सनातन बौद्धिक धर्म का संदेश लेकर देश में व्याप्त अनाचार समाप्त करने का प्रयास किया था। आत्मविश्वास की प्रबलता ही उनकी शक्ति थी। शंकराचार्य ने समस्त हिंदू राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने एवं उसे संगठित करने का प्रयास किया।

देश के चारों कोनों पर चार धामों और स्थापित चारों मठों (ज्यार्तिमठ, गोवर्धन मठ, शारदा मठ, श्रृंगेरी मठ) उनके स्वाभिमान तथा सनातन धर्म के स्वाभिमान के प्रतीक हैं, जो सनातन समाज को धर्म मार्ग पर नियंत्रित तथा अनुशासित करने का मुख्य केंद बना। शंकराचार्य ने इस सनातन धर्म का उद्धार करके हमारी सभ्यता तथा राष्ट्रीयता को बल दिया और स्वाभिमान को बढ़ाया। इससे टुकड़ों में बिखरे भारतीय राज्यों के एकीकरण के लिये सांस्कृतिक मार्ग प्रशस्त हुआ।

स्वामी विवेकानंद, जो सांस्कृतिक भावना के प्रमुख प्रणेता थे, स्वाभिमान और आत्मविश्वास से भरपूर थे। 11 सितंबर, 1893 को स्वामी विवेकानंद ने 'सर्वधर्म परिषद' के अधिवेशन में भारत की ओर से हिंदू धर्म का प्रतिनिधि बनकर, भारतीय संस्कृति और सभ्यता का परिचय विश्व के सामने प्रस्तुत किया था। उसका आधार आत्मशक्ति और आत्मविश्वास था। हमारा सनातन धर्म समस्त मानव जाति को शांति, संयम और प्रेम का संदेश देता रहा है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे संतु निरामयाः' का आचार- व्यवहार किसी अन्य देश का नहीं है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' और 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' की उद्घोषणा इसी संस्कृति ने की है। स्वामी विवेकानंद ने अमेरिका के शिकागो शहर में सम्पन्न एक सम्मेलन में अमरिकावासियों को 'बहनों और भाइयों' संबोधन से प्रभावित कर हिंदू धर्म की श्रेष्ठता का सिद्ध कर दिया। स्वामी जी का मानना थ कि भारतीय संस्कृति विश्व के लिये एक मिसाल कायम करेगी, क्योंकि इसकी संस्कृति वेदांत पर आधारित है, जो विश्वव्यापी है। ये हमेशा अध्यात्म की आत्मशक्ति पर चली है। वे चाहते थे कि देश और समाज आत्मशक्ति पर चले, जिससे आत्मविश्वास बढ़ेगा और देश का मान, सम्मान, स्वाभिमान तथा आत्मसम्मान बढ़ेगा।

स्वामी विवेकानन्द युवाओं के प्रेरणास्त्रोत, आधुनिक भारत के युवा सन्यासी एवं आदर्श व्यक्तित्व के धनी थे। उन्होंने कहा था, 'उठो, जागो और तब तक मत रुको, जब तक मंजिल प्राप्त न हो जाये।' स्वामी जी युवा सोच के सन्यासी थे। उनका मानना था, 'मेरा विश्वास युवा पीढ़ी में है। उसमें से मेरे कार्यकत्ता आयेंगे और सिंह के समान सभी समस्याओं का समाधान करेंगे।' भारत को दुनिया का सर्वाधिक युवा देश कहा जा रहा है। लेकिन इस युवाशक्ति की स्थिति क्या है? वह दिशाभ्रम और अज्ञान से ग्रस्त है। अधिकतर युवा अपने जीविकोपार्जन और सुरक्षा के प्रति भले ही सचेत हों, लेकिन उनके सामने जीवन लक्ष्य और उद्देश्य का नितांत अभाव है, उनमें आत्मविश्वास और स्वाभिमान की कमी है। स्वामी जी चाहते थे कि व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास के लिये स्वतंत्रता रहे। इसलिये स्वामी जी का कहना था कि लोग विदेशी अधिकार से स्वतंत्र रहकर अपने निजी ज्ञान भंडार की विभिन्न शाखाओं का तथा पाश्चात्य विज्ञान का भी अध्ययन करें। स्वामी जी मनुष्य को आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे। स्वामी जी ऐसी शिक्षा चाहते थे, जिससे व्यक्ति का चरित्र बने, बुद्धि का विकास हो और व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा होकर स्वावलंबी बने। स्वामी जी ने कहा था कि मुझे दस आदमी ऐसे दीजिये जिन्हें अपने आप में विश्वास हो और मैं समूचे विश्व का कायापलट कर दूंगा।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का जीवन दर्शन सत्य, अहिंसा, सादगी, स्वच्छता, स्वराज, स्वावलंबन पर आधारित था, जो हम सभी को प्रेरित

करता है। गांधी जी के नेतृत्व ने सादगी, स्वच्छता, स्वदेशी, ग्राम स्वराज और स्वावलंबन के माध्यम से आजादी की लड़ाई लड़ी और सफलता प्राप्त की। इसीलिये गांधी ने अपने जीवन में स्वावलंबी बने रहकर अपने अनुयायियों को स्वावलंबन की शिक्षा दी। गांधी द्वारा चरखा का चलन और स्वदेशी पर बल देने का उद्देश्य भी यही था। सेवा, त्याग, निर्मोह और स्वावलंबन पर आधारित महात्मा गांधी के विचारों ने संपूर्ण भारत को एक नयी दिशा प्रदान की। गांधी जी ने खादी को राष्ट्रीयता, समानता, स्वावलंबन और आत्मविश्वास के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया। गांवों की आत्मनिर्भरता हेतु चरखे द्वारा सूत कातने पर दिया। महात्मा गांधी ने चरखा और खादी पर बल देते हुए कहा, 'मेरे लिये चरखा और खादी का धार्मिक महत्व इस अर्थ में है कि यह प्रतीक है दोनों समुदायों के भूख और बीमारी का। यह हमारा सौभाग्य है कि यह आंदोलन नैतिक एवं आर्थिक समस्या के समाधान के साथ-साथ राजनीतिक समस्या का भी निवारण करेगा। गांधी जी ने आम जनता से अपील की थी कि आप महीन सूत कातें, ताकि मैनचेस्टर के कपड़ों से हमें छुटकारा मिले।' चरखा और खादी के द्वारा गांधी जी उत्पादक मजदूर की प्रतिष्ठा, सम्मान और स्वाभिमान बढ़ाना चाहते थे। उनका

कहना था कि सभ लोग, चाहे वे गांव में रहते हों या शहर में, उनको सूत कातकर स्वयं खादी वस्त्र तैयार करना चाहिये, जिससे समाज में आत्मनिर्भरता आयेगी और लोग स्वालंबी होंगे।

पंडित दीन दयाल उपाध्याय जी में स्वाभिमान, स्वावलंबन और आत्मविश्वास कूट-कूटकर भरा था। उन्होंने स्वयं कहा कि देश के कामकाज के लिये अपनी ही भाषाओं का प्रयोग व्यावहारिक एवं राष्ट्रीय स्वाभिमान दोनों ही दृष्टि से आवश्यक है। अखंड भारत की आवाज को बुलंद करने का श्रेय उपाध्याय जी को ही जाता है। दीन दयाल उपाध्याय जी, जो मूलतः संस्कृतिवादी थे, जो भौतिक जीवन के बने-बनाये पाश्चात्य मार्गों पर नहीं चलना चाहते थे। उपाध्याय जी का मानना था कि, 'जिनके सामने रोजी और रोटी का सवाल है, जिन्हें न रहने के लिये मकान है, न तन ढंकने लिये कपड़ा, अपने मैले-कुचैले बच्चों के बीच आज वे दम तोड़ रहे हैं। गांवों और शहरों के इन करोड़ों निराश भाई-बहनों को सुखी एवं सम्पन्न बनाना हमारा व्रत है। उच्च विचारों की प्रतिमूर्ति उपाध्याय जी का मानना था कि देश को एकता अखंडता के सूत्र में बांधे रखना है और अलगाववादी शक्तियों पर अंकुश लगाये रखना है तो समग्र राष्ट्र में सांस्कृतिक एकीकरण चेतना की जरूरत है और यह देश की जनता में स्वाभिमान, स्वावलंबन और आत्मविश्वास के द्वारा ही संभव है।

स्वामी सहजानंद सरस्वती ने जमींदारों द्वारा मजदूरों, किसानों, मध्यवर्गीय गरीब जनता पर किये गये अन्याय, अत्याचार एवं शोषण के प्रति अपनी आवाज उठायी थी। वे समाज में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय चाहते थे। समाज में एक वर्ग साधन सम्पन्न समाज (जमींदार वर्ग), दूसरा बहुसंख्यक वर्ग पूर्ण अभावग्रस्त, लाचार (किसान एवं खेतिहर मजदूर) है। जमींदार वर्ग के द्वारा किसान एवं खेतिहर मजदूरों का शोषण किया जा रहा था। वे किसान एवं खेतिहर मजदूरों को शोषण से मुक्त कर स्वावलंबी बनाना चाहते थे। जमींदार वर्ग के विरुद्ध आवाज उठाना उनके स्वाभिमान का प्रतीक था। स्वावलंबी और स्वाभिमानी होने के लिये ईमानदार होना आवश्यक है। ईमानदारी के द्वारा व्यक्ति स्वयं अनुशासित रहकर आत्मविश्वास को जगा सकता है। ईमानदारी से व्यक्ति का आंतरिक शांति एवं आत्मबल दोनों बढ़ता है। इससे अपार साहस एवं धैर्य आता है। इससे सकारात्मक सोच आती है, जो जीवन की तमाम चुनौतियों को स्वीकार कर आत्मविश्वास पैदा करती है। स्वामी सहजानंद सरस्वती के किसानों के प्रति सकारात्मक सोच का परिणाम था कि वे किसानों एवं मजदूरों के मसीहा बने।

स्वाभिमान की श्रेष्ठता से ही चरित्र बल बढ़ता है और इसके बल पर मनुष्य संकीर्ण स्वार्थ के मकड़जाल से निकलकर परमार्थी इंसान बनकर समाज में मान-सम्मान पाता है। स्वाभिमान इंसान को किसी प्रकार के गुनाहों से दूर रखता है। इससे वह समाज की नजर में ही नहीं, बल्कि स्वयं अपनी नजर में भी श्रेष्ठ दिखता है, उसका आत्मबल बढ़ता है। अतः हम कह सकते हैं कि स्वालंबन और स्वाभिमान मनुष्य जीवन के सौंदर्य अभिवृद्धि के दो मूल्यवान आभूषण हैं जिनके कारण समाज में व्यक्ति का व्यक्तित्व आकर्षक और अनुकरणीय बनता है और खुशबू दूर-दूर तक फैलती है।

स्वालंबन, स्वाभिमान और विकास का अंतरसंबंध काफी गहरा है। स्वाभिमान, साहस, चरित्र बल, ईमानदारी और आत्मनिर्भरता जैसे गुणों के द्वारा ही व्यक्ति का विकास संभव हो सकता है। शिक्षा के द्वारा मानसिक विकास, चारित्रिक विकास, व्यावसायिक कुशलता का विकास किया जा सकता है। शिक्षा से स्वावलंबन बढ़ता है और अंततः व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है। सकारात्मक सोच वाले लोगों के साथ रहने से आत्मविश्वास में वृद्धि होती है। यह आत्मविश्वास सफलता को प्रभावित करता है और असफलता को स्वीकार करना ही स्वावलंबन व स्वाभिमान का मूल मंत्र है। स्वालंबन को ही सफलता का आधार कहा जाता है। स्वालंबन वह मंत्र है जिसमें सफलता पक्की है। आज भारत के प्रधानमंत्री भाई नरेंद्र दामोदर दास मोदी विश्व के महारथियों के दिलों पर राज कर रहे हैं। इसका एकमात्र कारण उनकी ईमानदारी, आत्मविश्वास और उनका स्वाभिमान है।

(लेखक आर्थिक मामलों के जानकार एवं अंबिका फाउंडेशन पटना के संयोजक हैं)

वर्तमान में धर्म और अध्यात्म की स्थिति

श्रीश देवपुजारी

धर्म और अध्यात्म इन दोनों विषयों की परिभाषायें और व्याप्ति क्या है, यह आरम्भ में समझना अति आवश्यक है। इसका कारण यह दोनों पारिभाषिक शब्द हैं, जिनके बारे में अंगरेजी में भारत को समझाने और समझने वालों ने बहुत भ्रम उत्पन्न कर रखा है।

अध्यात्म

''अध्यात्मरतिरासीनो निराकाङ्क्षो निरामिषः। इति मनुः

''जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।

ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्। ७.२९ गीता।।

ऽअक्षरं परमं ब्रह्म स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।। ८.३ गीता।।

ऽमयि कर्माणि सर्वाणि सन्यस्याध्यात्मचेतसे।। ३.३० गीता।।

ऊपर दिये मनुस्मृति और गीता के श्लोकों से ज्ञात होता है कि जो आध्यात्मिक होता है वह आकांक्षा से रहित होता है। जो सभी कर्मों को ईश्वर को समर्पित करता है, वह सन्यस्त व्यक्ति आध्यात्मिक होता है। आगे वह मैं ही ब्रह्म हूँ यह जानने लगता है। इसे ही अध्यात्म कहते हैं।

वर्तमान काल मे अध्यात्म की ओर आकृष्ट होने वाले लोग कम ही हैं। कारण अधिकतर माया में फंसे रहते हैं। वहां से निकलना एक टेढ़ी खीर है। चावार्कों की बहुलता है। प्रपञ्च छोड सन्यास लेने वाले भी यह नहीं कर पा रहे हैं। वे पुनः आश्रम, सम्पत्ति, मान-सन्मान इत्यादि चक्कर में फँस जाते हैं और उत्तराधिकारी के रूप में अपने रक्त के ही व्यक्ति को स्थापित करते हैं। इसलिए अध्यात्म की ओर जाने वालों को मार्गदर्शन करने वालों का अभाव प्रतीत होता है।

धर्म-

धर्म याने नियम-

यह सर्वथा विवादित शब्द बन गया है। प्राचीन काल से अबतक संस्कृत विश्वविद्यालयों में धर्मशास्त्र नामका विभाग रहा है। उस शास्त्र के पाठ्यक्रम में 1950 के पहले के भारत के संविधानों को पढ़ाया जाता है, जिनको स्मृतियां कहते हैं। जैसे मनुस्मृति, नियाज्ञवल्कस्मृति, पराशरस्मृति इत्यादि। भारत एक सनातन राष्ट्र है। भारतवर्ष में रहने वाले लोगों को जिन नियमों से शासित किया जाता था, वे नियम ऋषि निश्चित करते थे। राजाओं का काम दण्डशक्ति के आधार पर उन नियमों का केवल पालन करवाना था। धर्म उन नियमों को कहा जाता है। नियम राजा के लिए भी थे। कोई नियमों के ऊपर नहीं था। इसलिये, राजा के राज्याभिषेक के समय ऋषि 'धर्मदण्ड्योऽसि' ऐसा त्रिवार राजा को सुनाते थे।

धृ ध्रियते लोकोऽनेन धरति लोक वा ।। मनुस्मृतिः।।

आज ऋषियों का काम संसद ने सम्हाला है। संसद में ऐसे भी सदस्य है जो स्वयं नियमों का पालन नही करते। उदाहरण के रूप में दहेज के विरुद्ध पारित नियम को ही लें। यह सर्व सहमति से पारित नियम है।

किन्तु पालन कितने सांसद करते है? यदि नियमों को रचने वालों की ही अनुशासन का पालन करने के प्रति श्रद्धा नहीं है तो आम जनता की स्थिति तो और दुर्बल होगी।

कर्तव्य याने धर्म-

कर्तव्य को भी धर्म कहा जाता है। आज केवल अधिकार की ही बात होती है। पुत्रधर्म, पतिधर्म, पत्नीधर्म का यदि पालन होता, तो वृद्धाश्रमों की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। विवाह विच्छेदों का प्रमाण भी घटता।

समाजधर्म-

समाजधर्म का पालन तो और क्षीण हुआ है। पूर्व में तो पुण्यलाभ के लिए लोग जनसेवा करते थे। अब स्वार्थ अधिक प्रबल हुआ है। धनलिप्सा वर्धिष्णु है। इससे शिक्षा संस्थान भी बचे नहीं हैं। पुरातन विद्यालयों के नाम किसी धनदाता के नाम पर होते थे। अब विद्यालय आय के साधन भर रह गए हैं।

व्यक्तिधर्म-

धर्म का अर्थ- पुण्यम, सुकृतम इति अमरः।1-4-24

न्यायः, स्वभावः, आचारः यथा महाभारते। 14-28-21

अहिंसालक्षणो धर्मो हिंसा चाधर्मलक्षणा ।।महाभारतम्।।

व्यक्तिधर्म का पालन तो संस्कारों के कारण होता है। संस्कारों का अभाव दिन प्रतिदिन गहराता जा रहा है। भारत सरकार ने यद्यपि 'सत्यमेव जयते' यह घोषवाक्य अपनाया है, सत्य बोलने वाले को मूर्ख माना जाता है। जो भ्रष्टाचार करता है, वह चतुर माना जाता है। इसलिए समाज में अपराध बढ़ रहे हैं।

लोग योग करने में लोग रूचि दिखा रहे हैं, किन्तु धर्म मार्ग पर चलना यह इच्छा नहीं है, समाधि प्राप्त हो यह उद्देश्य नहीं है, केवल मेरा आरोग्य ठीक हो, इसी प्रेरणा से आसन और प्राणायाम कर रहें हैं।

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा।

स्मरणं चैव योगेऽस्मिनपञ्च धर्माः प्रकीर्तितः ।।योगसारः।।

यज्ञ-याग पूर्व की तुलना में कम हो रहें हैं। उसमे भी स्मार्त यज्ञों की संख्या श्रौत यज्ञों की तुलना में अधिक है। यद्यपि त्वरित फल देनेवाले श्रौत यज्ञ ही हैं, किन्तु उसके लिये चारों वेदोंका उच्चारण करने वाले वैदिक आवश्यक होते हैं, जिनकी उपलब्धता सभी प्रान्तों में नहीं है।

विवाह में लाजा होम अनिवार्य है, किन्तु गुरुकुल में वेद-विद्या ग्रहण करने वालों की संख्या मर्यादित होने के कारण विवाह संपन्न कराने के लिए वैदिक नहीं मिलते। जो पुरोहित यह कार्य करते हैं, उन्हें लोग कम समय में विवाह सम्पन्न कराने का आग्रह करते हैं।

यो हि यागमनुतिष्ठति, तं 'धार्मिकः' इति समाचक्षते।

''यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः, तानि धर्माणि प्रथमान्यासन'' इति यजतिशब्दवाच्यमेव धर्मं समामनन्ति ।।वेदः।।

भारत एक सनातन राष्ट्र है। भारतवर्ष में रहने वाले लोगों को जिन नियमों से शासित किया जाता था, वे नियम ऋषि निश्चित करते थे। राजाओं का काम दण्डशक्ति के आधार पर उन नियमों का केवल पालन करवाना था। धर्म उन नियमों को कहा जाता है। नियम राजा के लिए भी थे। कोई नियमों के ऊपर नहीं था। इसलिये, राजा के राज्याभिषेक के समय ऋषि 'धर्मदण्ड्योऽसि' ऐसा त्रिवार राजा को सुनाते थे।

वेदप्रणिहितो धर्मो 'धर्मस्तद्विपर्ययः ।। इति श्रीभागवतम्।।

धर्म की सरल व्याख्या-

उपर्युक्त स्थिति में धर्म का आचरण कैसे हो यह समस्या है। एक सरल उपाय उपलब्ध है। महाभारत में 'यक्षप्रश्न' के प्रसंग में युधिष्ठिर ने धर्म की उत्तम परिभाषा दी है। युधिष्ठिर यक्ष के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं-

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्नाः नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः।।

महापुरुषों ने जैसा आचरण किया, वही धर्म मार्ग है। कारण श्रुति और मुनि दोनों धर्म की व्याख्या को लेकर सामान मत प्रकट नहीं करते। इसलिए सबने धर्ममार्ग पर चलने के लिए महापुरुषों का जीवन पढ़ना चाहिए और उसके अनुसार आचरण करना चाहिए।

आचारः प्रथमो धर्मः।

शिरीष देव पुजारी जी संस्कृत भारती के अखिल भारतीय महामंत्री है

हीनता की कुंठा से उबरने के लिए आवश्यक है इतिहास का पुनर्लेखन

गौरवपूर्ण संस्कृति किसी राष्ट्र का प्राण है और अपने स्वर्णिम इतिहास से ही देशवासी प्रेरणा ग्रहण करके निरन्तर विकास की कहानी लिखता है। इसी भावना को ध्यान में रखकर भारत की शिक्षा और संस्कृति पर प्रहार किया गया। मैकाले ने जिस शिक्षा व्यवस्था को स्थापित किया उसका मुख्य लक्ष्य ही था भारत में अंग्रेजी शिक्षा देकर एक ऐसा वर्ग तैयार करना जो रंग से भारतीय हों,पर उसकी आत्मा ब्रिटिश हो और उसकी मानसिकता अंग्रेजों की गुलामी के जंजीर में जकड़ी रहे।

डॉ अंजनी कुमार झा

भारतीय इतिहास की यह विडम्बना है कि सच में भारत का सही इतिहास लिखा ही नहीं गया। History is what historians interprete. किसी ने ठीक ही कहा है कि इतिहास घटित होता है, निर्देशित नहीं। जब किसी देश का इतिहास सत्ता से निर्धारित और निर्देशित होकर लिखा जाए तो वह इतिहास सत्याधारित न होकर झूठ एवं विकृत तथ्यों का पुलिंदा बन कर रह जाता है। यही सब हुआ भारत के इतिहास के साथ। औपनिवेशिक शासन काल में सत्ता निर्देशित इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास के रूप-स्वरूप को तोड़-मरोड़ कर पेश किया, इसने इतिहास लेखन में कई भ्रांतियां, कई विकृतियां भर दी जो अब भी भ्रमित कर रहा है। अब प्रश्न उठता है कि क्या ये विकृतियां अनायास आयीं? नहीं। औपनिवेशिक सामाज्य के बृहत उद्देश्य की प्राप्ति के लिए योजनाबद्ध बौद्धिक अभ्यास द्वारा ये विकृतियां लाई गयीं।

औद्योगिक क्रांति में अद्भुत सफलता के बाद ब्रिटेन ने विश्व के कोने कोने में उपलब्ध अकूत प्राकृतिक संसाधनों और दुनिया के विशाल उपभोक्ता बाजार पर नियंत्रण करने की योजना बनाई थी। इसके लिए भारत में शासन स्थापित करना पहली जरूरत थी। तत्कालीन भारत का राजनीतिक परिवेश भी दुर्भाग्यवश आक्रांता की अभिलाषा के अनुरूप था। औरंगजेब जैसे शासकों की धार्मिक कट्टरता, अय्याश मुगल शासकों की अदूरदर्शिता और अकर्मण्यता के कारण मुगल साम्राज्य विघटन के दौर से गुजर रहा था । अनेक सल्तनत और रियासतों में बंटे भारत में सर्वत्र अराजकता और अस्थिरता का दौर चल रहा था।

साम्राज्यवादी देशों की सोच होती थी कि किसी देश को उपनिवेश में बदलना हो तो पहले उसकी संस्कृति और उसके इतिहास को विखंडित करो, क्योंकि गौरवपूर्ण संस्कृति किसी राष्ट्र का प्राण है और अपने स्वर्णिम इतिहास से ही देशवासी प्रेरणा ग्रहण करके निरन्तर विकास की कहानी लिखता है। इसी भावना को ध्यान में रखकर भारत की शिक्षा और संस्कृति पर प्रहार किया गया। मैकाले ने जिस शिक्षा व्यवस्था को स्थापित किया उसका मुख्य लक्ष्य ही था भारत में अंग्रेजी शिक्षा देकर एक ऐसा वर्ग तैयार करना जो रंग से भारतीय हों,पर उसकी आत्मा ब्रिटिश हो और उसकी मानसिकता अंग्रेजों की गुलामी के जंजीर में जकड़ी रहे। उपनिवेश के लोग अपनी शिक्षा, अपनी संस्कृति, परंपरा, रीति रिवाज और अपने देश पर गर्व न करें। अंग्रेजों की नीति थी भारतीयों में अस्तित्वहीनता, पौरुषहीनता, अपने धर्म एवं संस्कृति के प्रति अनादर तथा अरुचि और राष्ट्र के प्रति अनादर का भाव पैदा करना, ताकि यहां के लोग लंबे समय तक औपनिवेशिक शासन को ही अपनी नियति मान लें और अपनी स्वतंत्रता और राष्ट्र गौरव के लिए विद्रोह करने की भी न सोचें। ऐसा करके साम्राज्यवादी इतिहास लेखक भारत

में अंग्रेजी शासन के औचित्य और इसका भारतीयों के हित में होना साबित करना चाहते थे। इस नीति में वे बहुत हद तक सफल भी हुए। आजादी की लंबी लड़ाई में कई अंग्रेजी शिक्षित अभिजात्य जेंटलमैन भारतीय अंग्रेजों के प्रति निष्ठा और समर्पण दिखाने में ही लगे रहे। भारत सचिव ड्यूक ऑफ आर्जइल्स ने ब्रिटिश पार्लियामेंट में रिपोर्ट करते हुए कहा था, भारत का प्राचीन धर्म नष्टप्राय है और यदि ईसाई धर्म उसका स्थान नहीं लेगा तो किसका दोष होगा। 1859 में ब्रिटेन के हाउस ऑफ कॉमन्स में तत्कालीन प्रधान मंत्री लॉर्ड पालमस्ट्रण ने कहा था, ''यह हमारा कर्तव्य ही नहीं ,अपितु हमारा हित भी इसी में है कि भारत भर में ईसाइयत का प्रचार हो।''

परतंत्रता के अवसाद से पीड़ित जनता आज्ञाकारी प्रजा बनकर रह जाती है, अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति सजग नागरिक नहीं बन पाता। सत्ता के निर्देशन में पुरातत्वविदों, शोधकताओं और इतिहासकारों ने भारत के स्वर्णिम अतीत के विकृत रूप को प्रस्तुत किया। कई भ्रांतियां फैलाई गईं, जैसे- भारतीयों के पूर्वज बर्बर, घुमंतू, अशिक्षित और असभ्य थे, आर्य यहां के मूल निवासी नहीं, आक्रांता थे। भारत सपेरों और जादू टोना में विश्वास करने वाले लोगों का रूढ़िवादी देश रहा है। उन्होंने ये नहीं बताया कि अपनी आर्थिक संपदा के कारण भारत 'सोने की चिड़िया' थी और ज्ञान, विज्ञान, साहित्य, ज्योतिष, स्थापत्यकला, मूर्तिकला, ज्योतिष, औषधि, अध्यात्म और दर्शन के क्षेत्र में अद्वितीय विकास के बल यह लंबे समय तक 'जगद्गुरु' के आसन पर स्थापित रहा था । साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने सुनियोजित ढ़ंग से अन्य कई मिथ्या धारणायें प्रसारित की। कहा गया कि भारतीयों में इतिहास बोध, कालगणना एवं इतिहास लेखन की क्षमता नहीं थी। रामायण एवं महाभारत में वर्णित कहानियां कपोल कल्पित मिथक से अधिक कुछ नहीं। पौराणिक साहित्य में राजवंशावलियों तथा राजाओं की गाथाओं और महिमा मंडन से अधिक कुछ नहीं। वे सब अप्रामाणिक एवं अविश्वसनीय हैं। उनका कहना था कि भारत में जो भी विकास हुआ, अंग्रेजी शासन में ही हुआ। भारत का शासन समग्र रूप से केंद्रीकृत सत्ता के अधीन अंग्रेजी शासन के पूर्व कभी नहीं रहा। साम्राज्यवादी इतिहासकारों का प्रयास था भारत के अतीत को अंधकारपूर्ण बताकर भारतीयों में यह सोच भरना कि अंग्रजी शासन उनके हित में है। वे यूरोप में प्रचलित 'व्हाइट मेन्स सुपिरियॉरिटी' और 'व्हाइट मेन्स बर्डेन' से प्रेरित, ईसाई मिशनरियों से प्रोत्साहित और औपनिवेशिक सत्ता से संपोषित थे। उनका लक्ष्य था भारत जैसे विशाल भूभाग पर नियंत्रण स्थापित करके, इसके अकूत संसाधनों का दोहन करना। इस कार्य में उन्हें तलवार की अपेक्षा यही मार्ग आसान लगा। ऐसा करके वे अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीयों को अपनी संस्कृति के प्रति निष्ठा, प्राचीन विकसित सभ्यता के प्रति आस्था और पौराणिक साहित्य के प्रति श्रेष्ठता के भाव से विमुख करना चाहते थे।

आधुनिक काल में भारतीय इतिहास लेखन का कार्य ईस्ट इंडिया कंपनी शासन के साथ ही शुरू हुआ, जिसमें सर विलियम जोन्स की अग्रणी भूमिका

थी। अन्य इतिहासकारों में कॉर्ल ब्रुक,जॉर्ज टर्नर, जेम्स प्रींसेप, वीए स्मिथ, एलिफिंस्टन आदि प्रमुख थे। उन इतिहासकारों ने जाने अनजाने प्राचीन घटनाओं, नामों, तिथियों और तथ्यों को तोड़ मरोड़कर अपनी इच्छानुसार प्रस्तुत करके शासक के उद्देश्य प्राप्ति में बहुत सहायक बना दिया। पाश्चात्य चिंतकों, इतिहासकारों, लेखकों, अनुवादकों, ईसाई धर्मप्रचारकों ने भारत की प्राचीनता, व्यापकता, अविच्छिन्नता और एकात्मकता को नहीं स्वीकार किया, बल्कि समाज में ब्राह्मणों अर्थात बुद्धिजीवियों के महत्व और प्रतिष्ठा को नष्ट करने का संगठित अभियान चलाया। उन इतिहासकारों ने कहा कि भारतीय सभ्यता 5000 वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं। उन्होंने रामायण, महाभारत, स्मृति, पुराण सबको कपोल कल्पित कहानी बताने की साजिश की। उनके इस कुत्सित प्रयास में भारत के कुछ सत्ता से प्रभावित वेतनभोगी,

साम्राज्यवादी इतिहासकारों का प्रयास था भारत के अतीत को अंधकारपूर्ण बताकर भारतीयों में यह सोच भरना कि अंग्रेजी शासन उनके हित में है। वे यूरोप में प्रचलित 'व्हाइट मेन्स सुपिरियॉरिटी' और 'व्हाइट मेन्स बर्डेन' से प्रेरित, ईसाई मिशनरियों से प्रोत्साहित और औपनिवेशिक सत्ता से संपोषित थे। उनका लक्ष्य था भारत जैसे विशाल भूभाग पर नियंत्रण स्थापित करके, इसके अकूत संसाधनों का दोहन करना। इस कार्य में उन्हें तलवार की अपेक्षा यही मार्ग आसान लगा। ऐसा करके वे अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीयों को अपनी संस्कृति के प्रति निष्ठा, प्राचीन विकसित सभ्यता के प्रति आस्था और पौराणिक साहित्य के प्रति श्रेष्ठता के भाव से विमुख करना चाहते थे।

धन लोलुप साहूकारों और स्वार्थी संस्कृत विद्वानों ने भी मदद की। भारत में बड़ी संख्या में कई विद्वान भी His masters voice के अनुरूप जमूरों की तरह नाचने लगे। उनकी बौद्धिकता व्यक्तिगत लाभ, पद, प्रोमोशन, प्रतिष्ठा, पुरस्कार, मान, प्रतिष्ठा और चाटुकारिता तक ही सिमट कर रह गई। शिक्षा, लेखन, चिंतन और दर्शन के स्तर पर उनकी विशेष दिलचस्पी नहीं रह गई। परिणाम हुआ कि 'चरैवेति-चरैवेति' के आदर्श पर चलने वाले भारतीय समाज में जातीय संकीर्णता, सामाजिक बुराइयां, रूढ़िवादिता और अंधविश्वास का चलन बढ़ने लगा। औपनिवेशिक इतिहास से दिग्भ्रमित भारतीय मानसिकता पर टिप्पणी करते हुए डाक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने लिखा है "The policy inaugurated by Macaulay with all its cultural value, is loaded on one side. While it is so careful as not to make us forget the force and validity of western culture, it has not helped us to love our own culture and refine it where necessary------ Macauliyan education succeeded in educating Indians who are more English than English themselves. They look upon India's cultural evolution as one dreary scene of discord, follies and superstitions. They are eager to imitate the material achievement of western states and tear up the roots of ancient civilization so as to make room for novelties imported from the west----- They declared that if india is to thrieve and flourish, England must be her "spiritual mother" and Greece her "spiritual grand father."

मैकाले ने अपनी शिक्षा नीति के बारे में कहा भी था , 'इस शिक्षा पद्धति से अगले ३० वर्षों में एक भी आस्थावान हिन्दू नहीं बचेगा। या तो वे ईसाई बन जायेंगे या नाम मात्र के हिन्दू रह जायेंगे ।

उपरोक्त वर्णित तथ्यों को समझने से यह स्पष्ट होता है कि ब्रिटिश शासन के काल में इतिहास लेखन में कई भ्रांतियां फैलाकर भारतीय मानस को कुंठित करने का सुनियोजित प्रयास किया गया। हमारा इतिहास अतीत के सुखद तथ्यों से अलग विकृत होता गया। इससे भारतीय जनमानस में हीनता का भाव पनपना भी स्वाभाविक था। बाद में चलकर पुनर्जागरण और भारतीय राष्ट्रीयता के प्रसार से बने परिवेश में वीर सावरकर, काशी प्रसाद जायसवाल, नीलकंठ शास्त्री, एएस अल्टेकर जैसे भारतीय विद्वानों ने सत्यपरक इतिहास लेखन शुरू किया। इन राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने औपनिवेशिक इतिहास में परोसी गई भ्रांतिपूर्ण विकृतियों का तथ्यों और तर्कों के सहारे काटने की कोशिश की। इन इतिहासकारों ने भारत के उन स्वर्णिम अतीत को उजागर किया, जिसमें ज्ञान-विज्ञान, खगोल एवं अंतरिक्ष विज्ञान, औषधि, गणित, कला, मूर्तिकला, स्थापत्य कला, लोक प्रशासन, राजनीतिक विचारों, अध्यात्म और दर्शन के क्षेत्र में हुई अतुलनीय विकास की गाथा दिखाई सुनाई देती है। हमारे वैदिक साहित्य में असीमित ज्ञान, हमारे शास्त्र पुराण, हमारे ऋषि, दार्शनिक, वराहमिहिर, आर्यभट्ट, कुमारगुप्त, पाणिनि, चरक, सुश्रुत, मनु, कालिदास, कौटिल्य, सामाज्य निमार्ता चन्द्रगुप्त, अजेय सम्राट समुद्रगुप्त, हमारे तमिल संगम साहित्य, कला प्रेमी पल्लव साम्राज्य, योद्धा छत्रपति शिवाजी, लोक कल्याणकारी सम्राट हर्षवर्धन, हरि सेन, बाणभट्ट, कुशल प्रशासक शेरशाह सूरी और राष्ट्रीय सम्राट अकबर पर हमें गर्व है। भारतीय इतिहास सुसज्जित है अपने मानववादी आदर्शों, विश्व बंधुत्व की भावना, महात्मा बुध, महावीर, कबीर, तुलसी, नानक, गुरु गोविंद सिंह, मीरा, रैदास, वसावन, चैतन्य, स्वामी दयानंद, राजा राम मोहन राय और स्वामी विवेकानंद के अमर गाथाओं एवं अमृत वाणी से। अतः समय आ गया है कि भारतीय छात्र कुंठा और हीनता के मकड़ जाल से बाहर निकलें, अपने अतीत पर पड़ी धूल को साफ करें, उस पर गर्व करें और उससे प्रेरित होकर अपने भविष्य का निर्माण करें। अपनी सोच और दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन करके ही भारतीय इतिहास की विकृतियों को दूर किया जा सकता है और एक बार फिर अपनी सोने की चिड़िया की फीकी पढ़ चुकी छवि को चमकाकर 'जगद्गुरू' के आसन पर देश पुनर्स्थापित हो सकता है। इसके लिये जरूरत है कि अतीत के ज्ञान के लिये व्यापक शोध को बढ़ावा दिया जाय, झूठे तथ्यों और पक्षपातपूर्ण व्याख्या के द्वारा स्थापित मान्यताओं की समीक्षा हो। यह भी जरूरी है कि विद्यालय एवं विश्विद्यालय के पाठ्यक्रमों को सुधारा जाये। पाठ्यक्रमों में अतीत की उल्लेखनीय उपलब्धि, राष्ट्र नायकों की जीवनी, भारतीय संस्कृति के उदात्त आदर्श विचारों आदि को शामिल किया जाये, ताकि आने वाली पीढ़ी को अपने अतीत की उपलब्धियों की जानकारी मिले, पाश्चात्य सोच विचार से पनपी सांस्कृतिक विकृतियों को ठीक किया जा सके तथा भारत के नागरिक हीनता की कुंठा से बाहर निकलकर सुखी, समृद्ध, शक्तिशाली राष्ट्र निर्माण में योगदान दे सकें और अपने आपको तथा राष्ट्र को गौरवान्वित कर सकें।

डॉ अंजनी कुमार झा, एम. ए. पीएच. डी। विश्विद्यालय में 30 वर्ष का शैक्षणिक अनुभव,स्वतंत्र लेखन । इंडियन इकनॉमिक एसोसिएशन का लाइफ मेंबर। चेयरमैन,डेवलपमेंट ऑफ इंडियन सोसाइटी एंड कल्चर (एनजीओ) का अध्यक्ष । सनातन धर्म और संस्कृति में अविचल श्रद्धा एवं अटूट विश्वास तथा राष्ट्रवादी सोच ।

स्वअनुशासन ही है 'आत्मनिर्भर भारत' की कुंजी

यह लेख उस समय लिखा जा रहा है, जब देश में कोरोनावाइरस के कारण लॉकडाउन की स्थिति बनी हुई है।

ज्ञानेंद्र भरथरिया
वरिष्ठ पत्रकार एवं इतिहासविद

यह महत्वपूर्ण बात है। आप ध्यान दें, भारत ने लॉकडाउन की घोषणा ठीक उसी समय कर दी थी, जब कोरोनावाइरस से उत्पन्न स्थिति की गंभीरता सिर्फ संभावना के दायरे में थी। पूरा चित्र किसी के सामने नहीं था।

कुछ देश ऐसे थे, जिन्होंने लॉकडाउन से बचने की पूरी कोशिश की थी। जैसे फ्रांस, जर्मनी और अमेरिका।

संकट उभरने के थोड़े ही समय बाद जी 7 देशों की एक ''वर्चुअल बैठक हुई''। सात में से चार देश लॉकडाउन के विरोध में थे, और तीन समर्थन में।

इस कहानी का क्या अर्थ है? अर्थ यह है कि इन देशों को यह फैसला करना था कि उन्हें अपनी अर्थव्यवस्था बचानी है, या अपने लोगों की जान बचानी है। जान बचानी है, तो लॉकडाउन करना पड़ेगा, अगर डॉलर कमाने की गति धीमी नहीं होने देनी है, तो लॉकडाउन न करें। जाहिर है, वे कोई साफ फैसला नहीं कर सके थे।

भारत ने सीधा फैसला किया। पैसा फिर भी कमा लेंगे, हम पहले जान बचाएंगे। स्थिति जैसे-जैसे नियंत्रण में आने लगी, प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने साफ कहा- हमें जान भी बचानी है, और जहान भी। आज नहीं, तो कल।

माने आप इस लेख के शीर्षक को थोड़ा मोड़ सकते हैं- ''जीवन का विकास से अंतर-संबंध। स्वावलंबन और स्वाभिमान तो चलता रहेगा।

लेकिन सबसे महत्वपूर्ण मोड़ आया 24 अप्रैल को। पंचायती राज दिवस के मौके पर देश के सरपंचों से बातचीत करते हुए प्रधानमंत्री ने एक बहुत महत्वपूर्ण संदेश दिया। उन्होंने कहा- ''मैं इस कार्यक्रम के माध्यम से एक संदेश देना चाहता हूं। कोरोना संकट ने हमें आत्मनिर्भर बनने का संदेश दिया है। बिना आत्मनिर्भर बने ऐसे संकटों से निपटना मुश्किल है। कोरोना महामारी ने हमारे लिए अनेक मुसीबतें पैदा की हैं, जिनकी हमने कभी कल्पना तक नहीं की थी।''

स्पष्ट है कि जीवन को भी स्वावलंबन, स्वाभिमान के साथ ही परिभाषित करना होगा।

बुद्धिमान समाज वह होते हैं, जो किसी संकट को अवसर में बदल सकें। कोरोना संकट की सकारात्मकता आत्मनिर्भर बनने के संदेश में है।

''आत्मनिर्भरता या स्वावलंबनश्

बहुत सुंदर नारा, बहुत सपाट शब्द, लेकिन बहुत जटिल प्रक्रिया है। पहले कोरोना संकट से ही इसे समझें। चीन से, चीन की हरकत से पूरी दुनिया बहुत क्रुद्ध है। यूरोप ने, अमेरिका ने चीनी जैविक हमले का दंश बहुत बड़े पैमाने पर झेला है। 26 अप्रैल। चीन ने यूरोपीय संघ को खुलेआम धमकी दी, और यह बात खुल कर सामने भी आ गई। ब्रुसेल्स ने बीजिंग पर खुला आरोप लगाया कि वह यूरोपीय संघ की उस रिपोर्ट को अवरुद्ध करवा रहा है, जिसमें चीन पर आरोप लगाया गया था कि वह कोरोनोवायरस के प्रकोप के बारे में जानबूझकर गलत खबरे फैला रहा है। चीन ने धमकी दी- रिपोर्ट रोको, वरना परिणाम भुगतना होगा। बीजिंग ने यह काम एक वरिष्ठ अधिकारी के स्तर पर किया, जिसने यूरोपीय अधिकारियों से संपर्क किया और उन्हें चेतावनी दी। रिपोर्ट 21 अप्रैल को जारी होने वाली थी, लेकिन चीनी हस्तक्षेप

के कारण मूल रिपोर्ट जारी नहीं हो सकी। जो रिपोर्ट अंततः जारी हुई, उसमें चीनी सरकार की आलोचना को हटा दिया गया था।

यही हाल आस्ट्रेलिया का हुआ, जो चीन की आलोचना करने के नाम पर भीगी बिल्ली की तरह म्याऊं करता रह गया।

कारण? बाकी बातें तो छोड़िए, कोरोना संकट में प्रयुक्त होने वाले व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरण (पीपीई) किट के लिए भी यूरोप और अमेरिका से लेकर आस्ट्रेलिया तक अधिकांश देश चीन पर ही निर्भर हैं, और वे खुले तौर पर चीन की आलोचना करने की भी स्थिति में नहीं हैं। दवाइयां ही नहीं, दवाइयों का रासायनिक तत्व भी अधिकांशतः चीन में ही बनता है।

फिर से याद करें- प्रधानमंत्री मोदी ने कहा- ''कोरोना संकट ने हमें आत्मनिर्भर बनने का संदेश दिया है। बिना आत्मनिर्भर बने ऐसे संकटों से निपटना मुश्किल है।''

यह आस्ट्रेलिया के एक समाचार पत्र का लिंक है। इसे पढ़िए। https://amp.smh.com.au/politics/federal/the-money-or-our-sovereignty-china-leaves-us-no-choice-20200501-p54p57.html?__twitter_impression=true&fbclid=IwAR24wgRw8MFfUrDC8CV4w3mLgAhc0OWksHcuaEeMqh5RsY

संक्षेप में, संडे मॉर्निंग हेराल्ड में 1 मई को प्रकाशित पीटर हर्चर (Peter Hartcher) का लेख सीधा एक सवाल करता है- ''ऑस्ट्रेलिया के लिए सच्चाई का सामना करने का क्षण आ गया है। उसे अब संप्रभुता और पैसे के बीच स्पष्ट तौर पर किसी एक विकल्प का चयन करना होगा।'' ("Australia has arrived at its moment of truth. It is now presented with the explicit choice between sovereignty and money.")

लेखक इस सवाल का उत्तर तलाशने की भी कोशिश करता है, और यह तलाश जितने छटपटाते अंदाज में की गई है, इससे स्थिति की गंभीरता का अहसास होता है। लेख कहता है झ्रऑस्ट्रेलिया को अपनी संप्रभुता के साथ साथ तीन और चीजों की रक्षा करनी होगी। ''इनमें से तीसरी चीज अर्थव्यवस्था है। राष्ट्रीय संप्रभुता का आत्मसमर्पण न करने से ही अर्थव्यवस्था की रक्षा सर्वश्रेष्ठ ढंग से हो सकती है। अर्थव्यवस्था की रक्षा के लिए संप्रभुता का सौदा करना एक छलावा है। एक बार संप्रभुता खो जाने के बाद, ऑस्ट्रेलिया के लिए अपने आर्थिक और वाणिज्यिक निर्णय लेने की प्रक्रिया से नियंत्रण भी जल्द ही समाप्त हो जाएगा। वास्तव में, संप्रभुता और अर्थव्यवस्था पूरक हैं। ऑस्ट्रेलिया केवल सुदृढ़ राष्ट्रीय स्वतंत्रता के जरिए ही अपने आर्थिक हितों की रक्षा कर सकता है।''

आत्मनिर्भरता या स्वावलंबन की आवश्यकता वर्तमान दौर में इतनी स्पष्टता से रेखांकित शायद ही पहले कभी हुई हो। लेकिन ''आत्मनिर्भरता या स्वावलंबनश्र का अहसास करना अपने आप उतना सरल नहीं है। चीन ने आस्ट्रेलिया से यही तो कहा था कि अगर

आस्ट्रेलिया वुहान वाइरस के स्रोत की जांच की मांग करेगा, तो चीन के पर्यटक आस्ट्रेलिया नहीं आएंगे। लेकिन क्या हमने विचार किया है कि किसी देश के पर्यटकों के लिए दूसरे देश जाना अपने आपमें कितनी सारी क्षमताओं का प्रतीक होता है? विचार करें- क्या आप सैर सपाटे के लिए कराची जाने के बारे में सोच भी सकते हैं? आपके पास न केवल पर्यटक स्थल होने चाहिए, बल्कि सर्वश्रेष्ठ सुविधाएं भी होनी चाहिए। कई भाषाओं के जानकार लोग, विश्व भर के व्यजंन और भोजन पका सकने में समर्थ लोग, विश्व स्तर की सड़कें, होटल आदि होने चाहिए, विश्व भर से आवागमन के साधन और सुविधाएं होनी चाहिए। सबसे बढ़कर, आपके जो भी नागरिक विदेशी पर्यटकों के संपर्क में आते हैं, उनका स्वभाव, चरित्र, उनकी सत्यता और निष्ठा, उनका ज्ञान, उनका व्यवहार, उनकी विनम्रता- सभी कुछ बहुत उच्च कोटि की होनी चाहिए।

इससे क्या होगा? इसे लाभ और हानि की दृष्टि से न देखें, इससे आपके देश की क्षमताओं के बारे में दुनिया को एक अंदाज हो सकता है। इसी पर निर्भर करता है कि आपके देश के उत्पाद के बारे में दुनिया का दृष्टिकोण क्या होगा। इसी पर निर्भर करेगा कि आपके देश के नागरिकों के बारे में दुनिया का दृष्टिकोण क्या होगा।

नागरिकों के बारे में दुनिया का दृष्टिकोण- एक जटिल पहेली है। अर्थशास्त्र में इसे मानव विकास सूचकांक Human Development Index कहा जाता है, जो एक आर्थिक-सामाजिक सूचकांक है। हालांकि भारत की परम्परागत शिक्षा व्यवस्था के मानक इससे कहीं ऊंचे रहे हैं, लेकिन अगर हम इन आधुनिक मानकों को भी स्वीकार कर लें, तो भी मानव विकास सूचकांक का एक सम्माननीय स्तर प्राप्त करने के लिए बहुत भागीरथी प्रयास करने होंगे। इससे आप आत्मनिर्भरता की दिशा में सिर्फ एक कदम आगे बढ़ सकेंगे।

सिर्फ एक कदम- इसे स्पष्ट करना जरूरी है। उदाहरण के लिए, लोग आत्मनिर्भरता या स्वावलंबन का सहज अर्थ स्वदेशी से निकाल लेते हैं। ठीक है, लेकिन सिर्फ एक सीमा तक। वहीं तक, जहां तक स्वदेशी का अर्थ देश में बने उत्पाद होता हो। जैसे दवाइयां और यहां तक कि तोप और विमान भी। लेकिन जब किसी नए उत्पाद को, नई तकनीक को, नई दवा को सामने लाना हो, तो क्या करना होगा ? माने स्वदेशी का अनुपालन कर सकने के लिए भी पहले भविष्यपरक स्वावलंबन का एक ठोस आधार तैयार करना होगा। यह काम उतना सरल-सहज नहीं है।

इससे संस्कृति या कम से कम जीवनशैली भी बहुत गहरे तौर पर जुड़ी हुई है। खास तौर पर कोरोना वाइरस के इस संकट के समय यह बात आसानी से चिह्नित की जा सकती है कि कुछ राष्ट्रों के लिए व्यक्तिगत स्वच्छंदता इतनी महत्वपूर्ण रही कि वे चाहकर भी सख्ती से लॉकडाउन लागू नहीं करवा सके। कोरोना वाइरस से संक्रमित लोगों को सामान्य लोगों से बचाकर रखने के लिए बनाए गए मोबाइल एप का कुछ राष्ट्रों में इस आधार पर विरोध किया गया कि इससे व्यक्ति की निजता का हनन होता है। माने कोई व्यक्ति कोरोना वाइरस से संक्रमित है या नहीं है, उसे यह बात छिपा कर रखने का अधिकार होना चाहिए। यह उसका निजी मामला है।

संकट के इसी दौर में संस्कृति से जुड़े पक्ष इसी प्रकार बार-बार सामने आए हैं। जैसे चीन ने लाखों लोगों की आवाज पर प्रतिबंध लगा दिया और वाइरस से जुड़े तथ्य अपने लोगों से, दुनिया के बाकी लोगों से छिपाए। वहां बहुत बड़ी संख्या में परिवारों को यही पता नहीं है कि उनका जो सदस्य कई दिन से ''लापता'' है, वह आखिर कहां है? जीवित भी है या नहीं? और अगर उसकी मृत्यु हो चुकी है, तो उनका अंतिम संस्कार सम्मानजनक ढंग से किया गया है, या उन्हें सल्फर डाइऑक्साइड का एक बुलबुला बना दिया गया है? ऐसा या तो सिर्फ जंगल राज में संभव है, या ऐसे समाजों में, जिनका सामाजिक ढांचा किसी टिड्डी दल की तरह है। मनुष्यों का समाज टिड्डी दल नहीं होता, उसके सांस्कृतिक दोष ही इसके लिए रास्ता खोलते हैं।

आप अगर इसे सीधे संस्कृति से नहीं जोड़ते, तो भी इसे अपनी सामाजिक-आर्थिक आदतों या संस्कारों से जोड़ सकते हैं। उदाहरण के लिए बचत करने की आदत या कठोर परिश्रम करने की आदत।

लॉकडाउन वह एकमात्र प्रतिकार था, जो कोरोना संकट के समय मनुष्य समाज को उपलब्ध था। जब कोई आर्थिक गतिविधि ही नहीं होगी, तो जीवनयापन कैसे होगा? जाहिर है, बचत कर सकने की, करते रहने की आपकी पुरानी निजी और सामूहिक आदत ही इस समय काम आ सकेगी। निजी बचत वह, जो आपके पास खर्च करने के लिए उपलब्ध हो और सामूहिक बचत वह राशि है, जो सरकार के पास, बैंक और वित्त संस्थानों के पास उपलब्ध रही होती है। अगर यह आदत न रही हो, तो समाज लॉकडाउन झेल ही नहीं सकता।

अपनी सामाजिक क्षमता, अपनी संस्कृति की शक्ति की एक झलक देखिए। कोरोना संकट के कारण भारतीय संस्कृति के कुछ ऐसे पक्षों को सामने लाने का अवसर मिला है, जिन पर हमारा ध्यान कम जाता था। 12 मार्च को अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रम्प और आयरिश प्रधानमंत्री लियो एरिक वराडकर वाशिंगटन में व्हाइट हाउस में मिलते हैं। दोनों एक दूसरे का अभिवादन पारंपरिक भारतीय नमस्ते से करते हैं। कारण स्पष्ट है। वाइरस के स्पर्श संचरण की श्रृंखला को तोड़ने में सहायक होने के लिए ₹नमस्ते₹ तुरन्त और विश्व स्तर पर प्रचलित हो गया था। यही स्थिति योग की हुई। यही स्थिति शाकाहार की हुई। भारत

ने 25 मार्च से शुरू हो कर तीन सप्ताह के लिए पूर्ण लॉकडाउन की घोषणा की। यह निश्चित रूप से कहीं भी और कभी भी कोरोना वायरस के प्रसार को रोकने के लिए की गई सबसे बड़ी कार्रवाई थी। क्या हमारे पास 130 करोड़ लोगों के बीच पूर्ण लॉकडाउन लागू कर सकने की प्रशासनिक या दंडात्मक क्षमता थी? शायद नहीं, लेकिन हमारे पर सांस्कृतिक क्षमता थी। रामायण, वस्तुतः रामायण भी नहीं, बल्कि रामानंद सागर द्वारा किया गया इसका चित्रण या रामानंद सागर की रामायण। 28 मार्च से उसका पुनः प्रसारण शुरू हुआ। रामायण के पहले चार शो ने 17 करोड़ दर्शकों को दूरदर्शन से बांध कर रख दिया। यह विश्व रिकार्ड है। दूरदर्शन के दर्शकों की संख्या में 650 प्रतिशत की वृद्धि हुई। दुनिया के अधिकांश देशों के लिए यह एक रहस्य था। लेकिन जो भारत को समझते हैं, उन्हें इसका उत्तर पता था।

हाल के यह उदाहरण जताते हैं कि आर्थिक संघर्षों का रास्ता भी किस तरह आपकी संस्कृति, स्वावलंबन और स्वाभिमान के रास्ते से होकर गुजरता है।

यहां से स्वावलंबन का स्वाभिमान से या राष्ट्रीय स्वाभिमान से संबंध सामने आता है। दूसरों की देखा-देखी स्वयं कर सकना स्वावलंबन नहीं हो सकता है।

आधुनिक अर्थशास्त्र का एक शब्द है- सोशल कैपिटल- या सामाजिक पूंजी। एक अच्छा डॉक्टर, इंजीनियर या अच्छा कारीगर बनने के लिए आपको औपचारिक और अनौपचारिक ढंग से कौशल और ज्ञान अर्जित करना होता है। यह आपकी निजी मेहनत होती है। लेकिन वह ज्ञान अर्जित करने के लिए आप कितनी अच्छी स्थिति में हैं, जैसे अपने दायरे के अन्य लोगों के बीच सार्थक बातचीत के माध्यम से आपको अपना कौशल और ज्ञान प्राप्त करने में कितनी मदद मिलती है? या जब आप वह ज्ञान प्राप्त कर चुकते हैं, तो अपने समाज में आप उसका कितना उपयोग कितनी सुविधा से कर पाते हैं ? जैसे अगर आप गणित का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लें, लेकिन आपके समाज में गणित को लोग निरर्थक समझते हों, तो आप इस ज्ञान का कोई खास उपयोग नहीं कर सकेंगे।

इस प्रकार आप सामाजिक पूंजी को इस रूप में भी देख सकते हैं कि यह वह पूंजी है, जिसमें समाज का हर व्यक्ति एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य और व्यवहार करता हो। अगर आप अच्छे शिक्षक हैं, तो आपके पास अच्छे छात्र भी होने चाहिए, अच्छी पाठशाला भी होनी चाहिए और छात्रों के अभिभावकों के पास आपका शुल्क चुकाने की क्षमता भी होनी चाहिए। तभी आप समाज के लिए उपयोगी हो सकेंगे और समाज आपके लिए उपयोगी हो सकेगा। यही बात हर पेशे पर लागू होगी। इसी का अर्थ यह भी है कि समाज में एक साथ आ सकने और अपने उन मूल्यों और मानदंडों के लिए दृढ़ बने रहने की क्षमता होनी चाहिए जो समाज में एकजुटता और सामाजिक विश्वास को बढ़ाने में मददगार हों। यह पूरे समाज की पूंजी होती है, जो अच्छी भी हो सकती है, और बुरी भी।

लेकिन पूरे समाज के विकास की धुरी यही होती है और यह आपके सकल संस्कारों पर टिकी होती है।

आपकी मेहनत कर सकने की क्षमता, नया कुछ सीख सकने की क्षमता, आपका अनुशासन और आत्म- अनुशासन, आपकी बचत कर सकने की क्षमता- जिसके बूते आप आमदनी को पूंजी में परिवर्तित कर सकते हैं, सबके साथ चल सकने की क्षमता, आपका संवाद का तरीका, आपके साथ के लोगों में आपका साथ दे सकने की क्षमता- यह और ऐसे अनेक गुण मिलकर विकास की दिशा में एक कदम बनते हैं। और यह सारे गुए, सारे समाज के संस्कारों में निहित होते हैं।

(लेखक राष्ट्रवादी चिंतनधारा के वरिष्ठ पत्रकार हैं।)

कैसे हो इतिहास लेखन की सांस्कृतिक विकृतियों का निवारण

रवि शंकर
वरिष्ठ पत्रकार एवं इतिहासविद

भारत के इतिहास पर, प्राचीन से लेकर आधुनिक तक, हजारों की संख्या में पुस्तकें मिल जाएंगी, हजारों विद्वान मिल जाएंगे, परंतु एक बड़ा प्रश्न यह है कि क्या ये सारे विद्वान भारत को ठीक से समझते हैं या फिर क्या ये पुस्तकें भारत को ठीक से समझाती हैं? प्रश्न बड़ा ही समीचीन है, आखिर भारत को समझने की शर्तें क्या हैं? यह तो हम बड़ी ही सरलता से कह जाते हैं कि विदेशियों ने और उन विदेशियों के लिखे साहित्य के आधार पर भारत का पूरा चित्र प्रस्तुत करने वाले वामपंथी विद्वानों ने भारत को समझा ही नहीं, परंतु फिर प्रश्न खड़ा होता है कि यदि उन्होंने इसे नहीं समझा तो क्यों नहीं समझा और यदि हम समझना चाहें तो क्या करना होगा?

आज ऐसी अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं जो भारत को भारतीय दृष्टि से समझाने का दावा करती हैं। परंतु दुर्भाग्यवश ऐसी पुस्तकें भी उसी यूरोपीय मायाजाल में ही उलझी हुई हैं। ऐसी पुस्तकें भारत के गौरव को तो बताना चाहती हैं, परंतु उनके लेखक उन्हीं पाश्चात्यों में प्रतिष्ठित भी होना चाहते हैं, जिनका वे निरंतर खंडन करते रहते हैं।

आज ऐसी अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं जो भारत को भारतीय दृष्टि से समझाने का दावा करती हैं। परंतु दुर्भाग्यवश ऐसी पुस्तकें भी उसी यूरोपीय मायाजाल में ही उलझी हुई हैं। ऐसी पुस्तकें भारत के गौरव को तो बताना चाहती हैं, परंतु उनके लेखक उन्हीं पाश्चात्यों में प्रतिष्ठित भी होना चाहते हैं, जिनका वे निरंतर खंडन करते रहते हैं। इसलिए इन पुस्तकों में हम परस्पर विरोधाभासी बातों का एक बड़ा जमावड़ा पाते हैं। इसलिए इस प्रश्न को हम प्रारंभ से ही समझना प्रारंभ करते हैं। सबसे पहला प्रश्न भारत की प्राचीनता का है। कितना प्राचीन है भारत? कितना प्राचीन है इसका इतिहास? यदि हम आज की पुस्तकों का आधार लेते हैं, तो भारत का इतिहास कठिनाई से 7-8 हजार वर्ष पुराना मानना पड़ता है। अधिकतर पुस्तकों का प्रारंभ सिंधु घाटी सभ्यता से होता है। जो पुस्तकें महाभारत से प्रारंभ भी करती हैं, वे भी भारत का इतिहास महाभारत से अधिकतम 3-4 हजार वर्ष प्राचीन ही मानती हैं। उदाहरण के लिए सूर्यकांत बाली जी की पुस्तकें भारतगाथा तथा भारत को समझने की शर्तें या फिर वेदवीर आर्य की पुस्तक क्रोनोलॉजी ऑफ एनशिएंट इंडिया देखा जा सकता है।

वर्ष 1921 में हड़प्पा तथा मोहनजोदाड़ों में खुदाई और उसमें नगरीय सभ्यता के अवशेष मिलने से पहले यूरोपीयों ने भारत के इतिहास की प्राचीनता वेदों से आंकने का प्रयास किया था। यह उनको भारत आने के बाद पता चल गया था कि भारतीय वेदों को सबसे अधिक प्राचीन मानते हैं यानी सृष्टि की उत्पत्ति के काल से। हालांकि वे इस बात से सहमत नहीं थे कि वेद सृष्टि के आरंभ में रहे होंगे, परंतु उन्होंने भारत के इतिहास का आरंभ वेदों से स्वीकार कर लिया था। इसलिए उन्होंने प्रारंभ में वेदों के काल को निर्धारित करने का प्रयास किया। बोर्नत्स्जेर्ना अपनी पुस्तक थियोगोनी ऑफ द हिंदूज में इस पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं, ''वेदों का सही काल निर्धारित करना यूरोप के पढ़े-लिखों में एक अनसुलझी समस्या बन गया है। उनमें से कुछ इसे काफी प्राचीन मानते हैं और कुछ काफी हाल का। हिंदुओं की कालगणना के लिए एक निश्चित बिंदु की पहचान कर ली गई है, जहाँ से आगे बढ़ा जा सकता है और यह बिंदु है राजा नंद का काल जो कि ईसा से 400 वर्ष पहले का है।'' इसके बाद बोर्नत्स्जेर्ना ने नंद के पहले हुए राजा अजातशत्रु जिनके बीच में छह राजा हुए, फिर पुराणों में उपलब्ध महाभारत काल से लेकर अजातशत्रु तक हुए 47 राजाओं के काल को 30 वर्ष प्रति

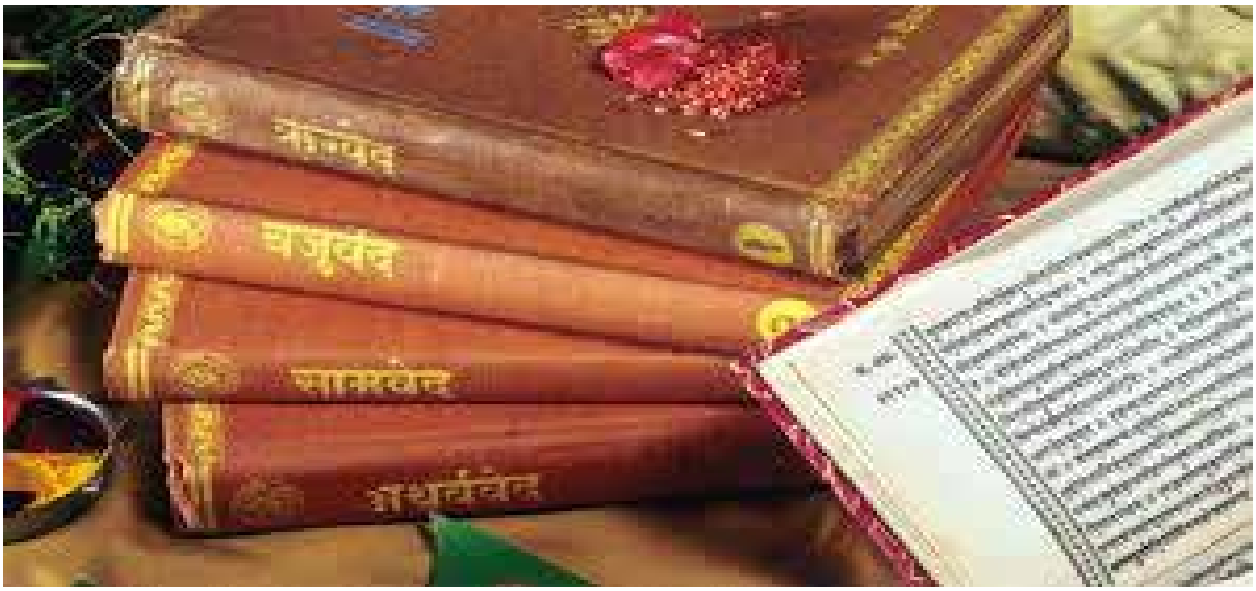

> आज के अनेक इतिहासकार केवल सात हजार वर्ष पूर्व रामायण को मानते हैं, परंतु सिंधु घाटी सभ्यता की प्राचीनता ही लगभग 11 हजार वर्ष पुरानी और खम्भात की खाड़ी में प्राप्त नगरीय अवशेषों की प्राचीनता लगभग 35 हजार वर्ष पुरानी आँकी गई है। ऐसे में रामायण को केवल सात हजार वर्ष पुराना मानना ऐतिहासिक विरोधाभास से अधिक कुछ और नहीं है।

राजा के हिसाब से जोड़ कर वेदों का कालनिर्धारण करने का प्रयास किया। उनके अनुसार वेदों का काल लगभग 2500 वर्ष ईसा पूर्व रहा होगा। कुछ यही काम मैक्समूलर ने भी किया था। उसने वेदों के काल को 1500 ईसा पूर्व कुछ इसी प्रकार के अनुमानों से तय किया था। परंतु उसके बाद तो गंगा में काफी पानी बह चुका है। मैक्समूलर को आज वेदों के काल के लिए कोई भी प्रामाणिक नहीं मानता। जर्मन विद्वान याकोबी ने 4500 वर्ष ईसापूर्व का काल स्वीकार किया है। ऐसे में भारत का इतिहास अपने आप 7-8 हजार वर्ष पहले चला जाता है। फिर हम रामायण को कितना प्राचीन स्वीकार करेंगे? जैसा कि आज के अनेक इतिहासकार केवल सात हजार वर्ष पूर्व रामायण को मानते हैं, परंतु सिंधु घाटी सभ्यता की प्राचीनता ही लगभग 11 हजार वर्ष पुरानी और खम्भात की खाड़ी में प्राप्त नगरीय अवशेषों की प्राचीनता लगभग 35 हजार वर्ष पुरानी आँकी गई है। ऐसे में रामायण को केवल सात हजार वर्ष पुराना मानना ऐतिहासिक विरोधाभास से अधिक कुछ और नहीं है।

इसलिए, भारत के इतिहास लेखन में सबसे पहली बात आती है कि प्राचीनता को आंकने का हमारा स्रोत क्या होगा? स्रोतों के दो प्रकार पर तो सभी इतिहासकार एकमत हैं। पहला प्रकार है लिखित साहित्य और दूसरा है पुरातात्विक संदर्भ। आजकल एक नक्षत्रीय गणना भी की जाने लगी है। कुल मिलाकर यही तीन प्रमुख साक्ष्य हैं। भारत के इतिहास की बात करें तो लिखित साहित्य में सबसे प्रमुख संस्कृत साहित्य है। चारों वेद, वेदों के ब्राह्मण, आरण्यक, स्मृतियां, वाल्मीकि रामायण, महाभारत, पुराण और ज्योतिषीय ग्रंथ। इतने विपुल साहित्य के आधार पर भारत का इतिहास निकालने का एक प्रयास किया जाता है। मैक्समूलर सरीखे पाश्चात्य इतिहासकारों से लेकर लोकमान्य तिलक, रमेशचंद्र मजुमदार, भगवद् दत्त, आर.एस. शर्मा, रोमिला थापर, भगवान सिंह आदि भारतीय इतिहासकार, सभी इस साहित्य को प्रमाण के रूप में स्वीकार करते हैं। इसमें समस्या केवल एक है और उस समस्या का जन्म यूरोप में होता है। उस समस्या के जन्म लेने से पहले भारत में कम से कम किसी को भारत की प्राचीनता को लेकर कोई भ्रम नहीं रहा है। यह समस्या है बाइबिल की।

बाइबिल के अनुसार पृथिवी की रचना 4004 ईसापूर्व में हुई थी। यूरोप में ईसाइयत के उत्थान के बाद यूरोप में जो अंधकार युग प्रारंभ हुआ था, उस युग के अवसान के बाद भी यूरोपीय इतिहासकारों का इतिहास इसके इर्द-गिर्द ही घूमा करता था। हालांकि मिस्र और अरबों के माध्यम से भारतीय ज्ञान के संपर्क में आने के बाद से उन्हें यह तो पता चल गया था कि पृथिवी के रचनाकाल को काफी पीछे ले जाना होगा, परंतु वे सभ्यताओं के इतिहास को बाइबिल की इस गणना से पीछे ले जाने के लिए बिल्कुल भी तैयार नहीं हो पा रहे थे। जो कैलेंडर आज हम प्रयोग करते हैं, वह कैलेंडर ही इतिहास को संकीर्ण रूप से देखने का प्रमुख आधार है। यह कैलेंडर ईसा के मिथक के प्रादुर्भाव से शुरू होता है। स्वाभाविक ही है कि जब कैलेंडर ही छोटा होगा तो आप उससे कितना पुराना नाप पाएंगे? उन्होंने इतिहास को ईसा के पहले और ईसा के बाद में बाँट दिया। अब जब ईसा के बाद दो हजार साल ही बीते हैं तो उससे पहले का इतिहास वे लाखों वर्षों में कैसे देख पाएंगे? वह

इतिहास भी उन्हें कुछेक हजार वर्षों में समेटना होता है। इसलिए साक्ष्यों को नजरअंदाज करके वे अपनी अटकलें पूरी दुनिया पर थोपते रहते हैं।

प्रश्न है कि यदि ह म भारतीय साहित्य को स्रोत के रूप में स्वीकार कर सकते हैं तो फिर भारतीय कालगणना को स्वीकार करने में बाधा क्या है? इसका उत्तर कोई नहीं देता। आखिर मनुस्मृति से लेकर सूर्य सिद्धांत तक में युगों की गणना का एकदम साफ वर्णन है। इस वर्णन के आधार पर हम सृष्टि संवत्, कलि संवत और युग संवत् आदि मानते हैं। ये ई ँ ँ संवत् भारतीय परंपरा में इतने रचे बसे हैं कि पूरे देश में इन्हें उत्सव के रूप में मनाया जाता है। साफ बात है कि यूरोपीय ईसाइयों के भारत आने से पहले देश में एक सुस्पष्ट कालगणना की पद्धति थी और उसके आधार पर यहाँ का इतिहास भी वर्णित था। उदाहरण के लिए दशरथ के पुत्र श्रीराम के काल के बारे में साफ-साफ वर्णित है कि वे त्रेता युग में हुए थे। युगों की कालगणना मनुस्मृति और सूर्यसिद्धांत में ठीक से दी हुई है। इन दोनों ग्रंथों के अनुसार कलियुग चार लाख 32 हजार वर्ष, द्वापर युग आठ लाख 64 हजार वर्ष, त्रेता युग 12 लाख 96 हजार वर्ष और सतयुग 17 लाख 38 हजार वर्ष के होते हैं। इसी गणना के अनुसार कलियुग के 5109 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस अनुसार स्पष्ट है कि श्रीराम का काल कम से कम आठ लाख 75 हजार वर्ष पुराना तो है ही।

समस्या यह थी कि ईसा के दो हजार आगे और दो हजार पीछे से अधिक नहीं देख पाने वाले इतिहासकारों को इतनी लंबे काल की बात सुन कर चक्कर आने लगते थे। यूरोपीय ईसाइयों का इतिहास कठिनाई से ईसा से दो हजार पीछे तक ही जा पाता था। उसमें भी उन्हें समस्या यह है कि ईसा से पाँच सौ वर्ष पहले का भी कुछ भी लिखित इतिहास अपने मूल स्वरूप में उपलब्ध ही नहीं है। ऐसे में उन्हें यह मानने में भारी कठिनाई हो रही थी कि भारत में महाभारत आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व लिखा जा सकता था, या फिर रामायण की रचना वाल्मीकि ने आज से कुछ लाख वर्ष पहले की होगी और वह आज तक सुरक्षित चली आ रही है। जब महाभारत और रामायण की प्राचीनता को स्वीकार करने में

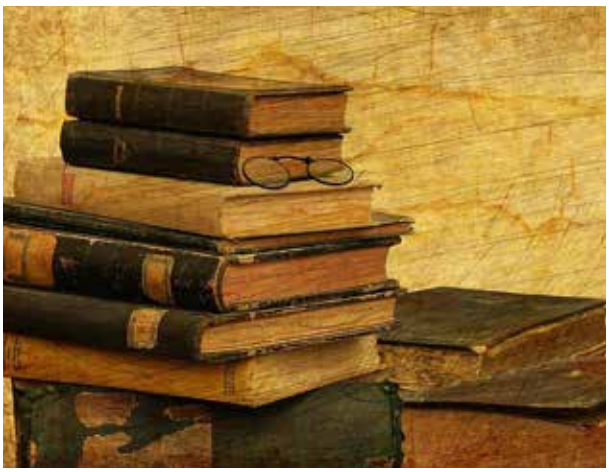

उन्हें इतनी अधिक समस्या आई तो स्वाभाविक ही है कि वेदों का काल तय करने में तो उनके पसीने छूट गए होंगे।

यदि हम ईसा और बाइबिल के संदर्भ को इतिहास के पटल से हटा दें और शुद्ध भारतीय शास्त्रों की गणना का आधार लें तथा इससे वेदों का काल समझने का प्रयास करें तो सभी भारतीय विद्वान एकमत हैं कि वेदों का काल सृष्टि के आदि का है। सृष्टि का आदि भी सभी मतभेदों के बाद भी लगभग एक अरब 95 लाख से एक अरब 97 लाख वर्ष पूर्व के बीच में आता है। प्रश्न है कि इतनी सुस्पष्ट गणना को लोकमान्य तिलक जैसे पुराने और वेदवीर आर्य सरीखे आज के राष्ट्रवादी लेखक क्यों नहीं मानना चाहते? इसका एक बड़ा कारण जो समझ में आता है, वह

मनुस्मृति से लेकर सूर्य सिद्धांत तक में युगों की गणना का एकदम साफ वर्णन है। इस वर्णन के आधार पर हम सृष्टि संवत, कलि संवत और युग संवत आदि मानते हैं। ये संवत भारतीय परंपरा में इतने रचे बसे हैं कि पूरे देश में इन्हें उत्सव के रूप में मनाया जाता है। साफ बात है कि यूरोपीय ईसाइयों के भारत आने से पहले देश में एक सुस्पष्ट कालगणना की पद्धति थी और उसके आधार पर यहाँ का इतिहास भी वर्णित था। उदाहरण के लिए दशरथ के पुत्र श्रीराम के काल के बारे में साफ-साफ वर्णित है

यह है कि सभी इतिहासकार आज के तथाकथित वैज्ञानिक अनुसंधानों के साथ तालमेल बैठाना चाहते हैं। इन अनुसंधानों से वे मानव सभ्यता का इतिहास दस हजार वर्ष से पीछे नहीं ले जा पा रहे हैं। उससे पीछे उन्हें अविकसित मानवों की खोपड़ियां ही मिल रही हैं। और इसलिए राष्ट्रवादी से लेकर वामपंथी तक सारे इतिहासकार इस सीमा में ही भारत का इतिहास बांधने का प्रयास करते हैं।

कुल मिला कर भारतीय गणनाओं को मानने में पहले बाइबिल की बाधा थी और आज विज्ञान की बाधा है। समझने की बात यह है कि पश्चिम का जो विज्ञान है, वह प्रकारांतर से ईसाई मान्यताओं की पुष्टि के लिए गढ़ा गया विज्ञान है। इसलिए वह बाइबिल से बहुत अधिक दाँए-बाँए नहीं जा सकता। हालाँकि पश्चिमी विज्ञान और बाइबिल में अनेक टकराव भी हमें दिखते हैं परंतु कुछेक मामलों में दोनों ही समान हैं। पहली समानता, स्वयं को ही एकमात्र सत्य मानने की मानसिकता है। दूसरी समानता, अपनी अज्ञानता को पूरी दुनिया पर लाद देने की है। तीसरी समानता, क्षुद्र दृष्टि है। इस प्रकार भले ही कुछेक निष्कर्षों में दोनों भिन्न दिखते हों, अन्तिम परिणाम दोनों के समान ही आते हैं।

पाश्चात्य विज्ञान ने भारतीय कालगणना को मानने में सबसे बड़ी बाधा विकासवाद के रूप में खड़ी की है। इसके अनुसार आदमी पहले बंदर

था, फिर वह थोड़ा विकसित हुआ तो आदिमानव बना और विकसित हुआ तो जंगली मानव बना, और विकसित हुआ तो ग्रामीण मानव बना, और विकसित हुआ तो शहरी मानव बना, और विकसित हुआ तो मेट्रो मानव बन गया है, और अधिक विकसित होगा, जिसकी कोशिश आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान कर रहा है तो वह अंतरिक्ष मानव बन जाएगा। इस विकासवाद के आधार पर ही पूरी दुनिया के इतिहास को वे तो लिख ही रहे हैं, भारत को भी समझने और समझाने का प्रयास कर रहे हैं, समस्या यह है कि हमारे देश के राष्ट्रवादी लेखक भी इस बाधा दौड़ में ठोकर खाकर गिर पड़े हैं। इसलिए यदि हम भारत के इतिहास को सही-सही समझना चाहते हैं तो इसके लिए निम्न शर्तें स्वीकार करनी होंगी।

पहली शर्त

पहली शर्त है अपने शास्त्रों के आधार को समझना और उस पर विश्वास रखना। भारतीय इतिहास की घटनाओं के काल को समझने के लिए दूरदृष्टि दोषग्रस्त पाश्चात्य मतों की बजाय भारत के अपने निर्भ्रांत और सुस्पष्ट आधारों का ग्रहण किया जाए। उदाहरण के लिए सूर्यसिद्धांत और मनुस्मृति में युगों की कालगणना दी हुई है। युगों का काल उसके अनुसार ही निकाला जाएगा। इसके आधार पर भगवद्दत्त, रघुनंदन शर्मा, पंडित कोटा वेंकटचलम जैसे विद्वानों ने काफी पहले ही वेदों के काल पर मैक्समूलर से लेकर बालगंगाधर तिलक तक के मतों की समालोचना कर रखी है। उनकी सभी आपत्तियों का सप्रमाण उत्तर दे रखा है। उसे पढ़ना चाहिए।

दूसरी शर्त

दूसरी शर्त है कि हमें आधुनिक विज्ञान के चश्मे से भारतीय परंपराओं और इतिहास को समझने का प्रयास बंद करना होगा। इसका एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा। जैविक वस्तुओं का काल नापने के लिए आज का विज्ञान कार्बन डेटिंग का प्रयोग करता है। इस प्रक्रिया में काफी कमियां हैं। इसमें पहला दोष तो यही है कि सही काल को मापना संभव ही नहीं है, क्योंकि कार्बन 12 और कार्बन 14 के अनुपात और उसमें आने वाले परिवर्तन को प्रभावित करने वाले कारक बड़ी संख्या में हैं। कोई आवश्यक नहीं है कि कार्बन 14 और कार्बन 12 के अनुपात में परिवर्तन एक निश्चित गति और दर से ही होता हो। इसलिए इनसे निश्चित तो छोड़ ही दें, अनुमानित काल भी नहीं जाना जा सकता। यह एक हाइपोथीसिस पर आधारित है, किसी निश्चित जानकारी पर नहीं।

इसी प्रकार विकासवाद के आधार पर दुनिया के इतिहास को समझने का प्रयास भी उतना ही अवैज्ञानिक और त्रुटिपूर्ण होगा। विकासवाद की सबसे बड़ी कमी यह है कि एक योनि से दूसरी योनि में परिवर्तन आज तक कहीं भी देखा नहीं गया है। कोई भी गाय, हिप्पोपोटेमस और कोई भी हिप्पोपोटेमस, व्हेल में बदलता आज तक नहीं देखा गया। इसके चरणों का एक अनुमान ही लगाया जाता है। प्रश्न यह है कि इन सभी जीवों की स्वतंत्र उत्पत्ति मानने में समस्या क्या है? आखिर इन सभी जीवों को एक-दूसरे से ही क्यों विकसित होना चाहिए? विकासवाद पर भारतीय शास्त्रों का मत बहुत साफ है। भारतीय शास्त्र योनि-परिवर्तन को स्पष्ट रूप से असंभव मानते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से आज तक के इसके सभी प्रयोग असफल भी रहे हैं।

विकासवाद की समालोचना रघुनंदन शर्मा ने वैदिक संपत्ति में और वैद्य गुरूदत्त ने अपनी पुस्तक विज्ञान और विज्ञान तथा सृष्टि रचना में विस्तार से किया हुआ है। वैदिक संपत्ति में विकासवाद की समीक्षा में विकासवाद के पाँचों आधारों, जाति विभागशास्त्र (क्लासीफिकेशन), तुलनात्मक शरीररचना शास्त्र (कम्पैरेटिव एनॉटॅमी), गर्भवृद्धिशास्त्र (एम्ब्रियोलॉजी), लुप्त जन्तु शास्त्र (पैलिओन्टोलोजी) और भौगोलिक विभागशास्त्र (जियोग्राफिकल डिस्ट्रीब्यूशन) का गहन विवेचन किया है। उन्होंने इन सभी आधारों पर जो प्रश्न उठाए हैं, वे आज तक के विज्ञान में अनुत्तरित ही हैं। इसी प्रकार गुरुदत्त ने अपनी पुस्तकों में विकासवाद पर आधुनिक वैज्ञानिकों ने जो प्रश्न उठाए हैं, उन्हें भी प्रस्तुत किया है। ऐसे में एक अपुष्ट सिद्धांत के आधार पर मानवों का पूरा इतिहास लिख डालना धृष्टता ही कहा जाएगा। यहां हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि आज से केवल हजार वर्ष पहले जब भारतीय लोग पृथिवी और सूर्य की दूरी का वास्तविक आकलन करने में सक्षम थे, यूरोपीय विद्वान सूर्य को पृथिवी से छोटा साबित करने के प्रयासों में लगे हुए थे। कॉस्मॉस द मोंक की पुस्तक क्रिश्चियन टोपोग्राफी में इस पर काफी परिश्रम किया गया है। आज वे मानते हैं कि इस बारे में वे गलत थे और भारतीय सही। ठीक इसी प्रकार विकासवाद की अवधारणा कठिनाई से डेढ़ सौ वर्ष पुरानी ही है। बहुत संभावना है कि आने वाले दो-तीन सौ वर्षों

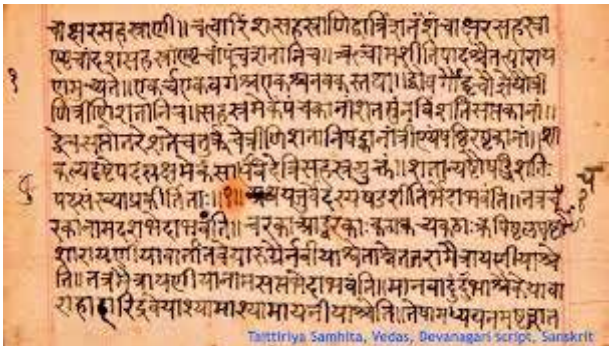
Taittiriya Samhita, Vedas, Devanagari script, Sanskrit

में उन्हें अपनी भूल ज्ञात हो जाए और वे विकासवाद को अशुद्ध मान लें। इसलिए विकासवाद को आधार बनाकर जो भी इतिहास लिखा जा रहा है, वह अशुद्ध ही होगा। भारत को समझने की यह दूसरी शर्त है।

तीसरी शर्त

भारत को आप पाश्चात्य शब्दावली से नहीं समझ सकते। हरेक शब्द की अपनी पृष्ठभूमि और परंपरा होती है। उस परंपरा को समझे बिना उसका उपयोग अर्थ का अनर्थ कर सकता है। उदाहरण के लिए

सेक्युलर शब्द को ले सकते हैं। सेक्युलर शब्द का कोई भी भारतीय समानार्थी शब्द नहीं हो सकता, क्योंकि भारत में कभी भी यूरोप की भांति किसी भी मत-पंथ-संप्रदाय का शासन रहा ही नहीं है। सेक्युलर स्टेट क्रिश्चियन स्टेट का विपरीत होता है। जो राज्य पोप के शासन से मुक्त होता था, उसे ही सेक्युलर राज्य कहा जाता था। इस प्रकार यदि हम सेक्युलर शब्द का परंपरावाचक अर्थ करेंगे तो उसका अर्थ केवल इतना ही होगा। हालांकि पंथनिरपेक्ष राज्य के रूप में उसका विस्तार करने का एक प्रयास किया जाता है, परंतु वह प्रयास भी अंततः धर्मनिरपेक्षता के रूप में दम तोड़ देता है।

शब्दावलियों की बात करें तो भारतीय संदर्भों में दलित, पिछड़े, पितृसत्ता, मातृसत्ता, मजहब, मजहबी युद्ध, रिलीजन, सेक्युलर आदि शब्द कोई अर्थ नहीं रखते। भारतीय इतिहास में इनका कोई स्थान कभी नहीं रहा है। शूद्र होते रहे हैं, परंतु वे समाज में कभी भी उपेक्षित नहीं रहे। शूद्रों के अलावा अवर्ण भी रहे हैं, परंतु उनकी भी कोई उपेक्षा या अपमान करने की भावना नहीं रही है। परिवार रहे हैं, परंतु परिवारों में कभी सत्ता की कोई अवधारणा नहीं रही है। विभिन्न मत-पंथ तथा राज्य रहे हैं, परंतु मत-पंथों के गुरुओं ने यूरोप के विपरीत राज्यसत्ता का त्याग ही किया है, उस पर कब्जा कभी भी नहीं किया। बल्कि होता तो यह रहा है कि राजा एक निश्चित समय के बाद स्वयं ही राज्य छोड़ कर वानप्रस्थी या फिर सन्यासी हो जाया करते थे। विश्वामित्र, राजा भतृहरि आदि इसके उदाहरण हैं। राजा दशरथ भी राज्य त्यागने वाले थे और यदि श्रीरामचंद्र को वनवास न मिला होता तो वे भी वन जाने वाले थे। धृतराष्ट्र और कुंती आदि के वनगमन का तो उल्लेख मिलता ही है। इसलिए पाश्चात्य शब्दावलियां भारत को समझाने में असफल रहती

> विकासवाद के आधार पर दुनिया के इतिहास को समझने का प्रयास भी उतना ही अवैज्ञानिक और त्रुटिपूर्ण होगा। विकासवाद की सबसे बड़ी कमी यह है कि एक योनि से दूसरी योनि में परिवर्तन आज तक कहीं भी देखा नहीं गया है। कोई भी गाय, हिप्पोपोटेमस और कोई भी हिप्पोपोटेमस, व्हेल में बदलता आज तक नहीं देखा गया।

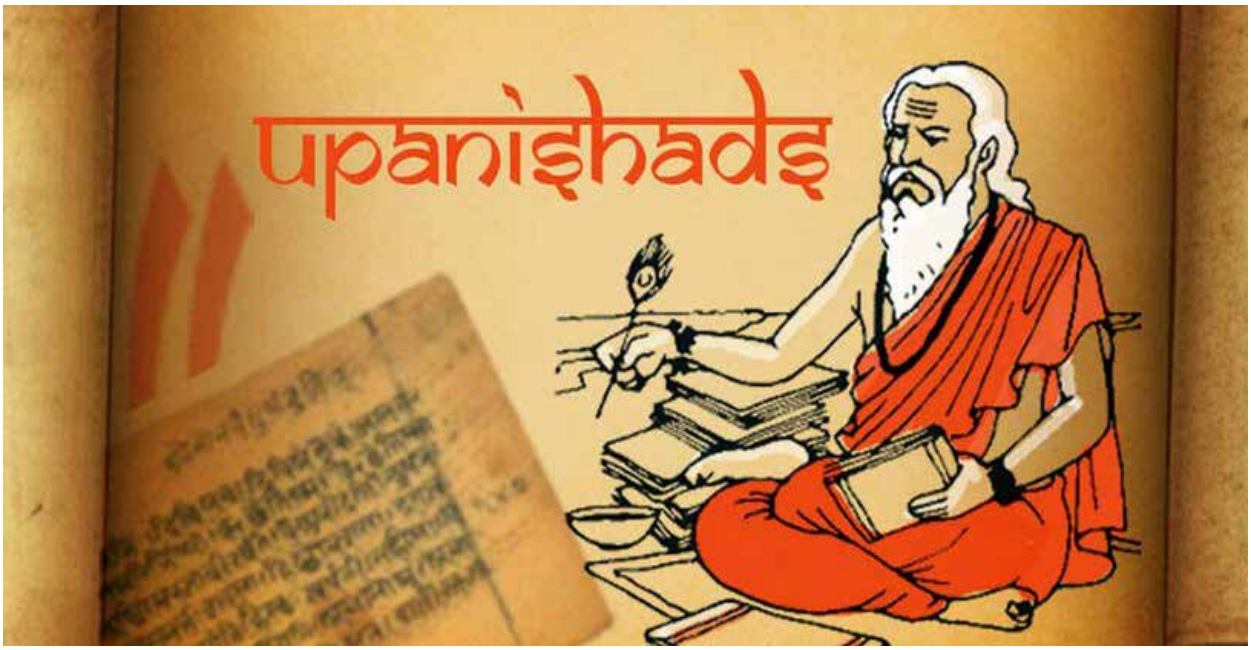

हैं। उनका उपयोग घातक भी होता है। रणनीतिक रूप से यदि कुछ सही प्रतीत भी हो रहा हो, तब भी कालांतर में उसका गंभीर नुकसान होने के संभावना है, क्योंकि उससे हम ऐसी स्थापनाएं कर जाएंगे, जो वस्तुतः यहाँ रही ही नहीं है।

चौथी शर्त

भारत को समझने की चौथी शर्त यह होगी कि स्रोतों के प्रति अत्यधिक सावधानी रखें। उदाहरण के लिए आज हम भारतीय इतिहास के काल निर्धारण के लिए मेगास्थनीज को एक प्रमुख स्तंभ मानते हैं। परंतु वस्तुतः मेगास्थनीज की मूल पुस्तक ही उपलब्ध नहीं है। मेगास्थनीज ही नहीं, उसके काल के अधिकांश ग्रीक लेखकों की कोई मूल पुस्तक उपलब्ध नहीं है। समस्या यह है कि विलियम जोन्स ने जब मेगास्थनीज के सैंड्राकोटट्स के चंद्रगुप्त मौर्य होने की बात कही, तब किसी ने उस पर सवाल खड़ा नहीं किया। यदि मौर्यवंश के काल को इसके अनुसार 325 ईसापूर्व में मान लिया जाता है तो फिर शंकराचार्य का काल काफी बाद का यानी कि लगभग 788 ई. सन का हो जाता है। वेदांत दर्शन के इतिहास में आचार्य उदयवीर शास्त्री ने शंकराचार्यों की चारों पीठों में उपलब्ध आचार्यों के कालक्रम के आधार पर शंकराचार्य का काल 570 ईसा पूर्व का साबित किया है। यह सही भी प्रतीत होता है, क्योंकि राजस्थान से लेकर हिमाचल प्रदेश तक देश के विभिन्न प्रांतों में राजा युधिष्ठिर से लेकर ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी और कुछ में तो आज तक के राजाओं की वंशावलियां पाई जाती हैं। इन वंशावलियों को ध्यान में रखें तो फिर मौर्य वंश को 325 ईसा पूर्व में मानना कठिन हो जाता है। यदि शंकराचार्य का काल बारह सौ वर्ष पीछे चला जाता है तो मौर्य वंश का काल भी लगभग इतना ही वर्ष पीछे चला जाएगा।

समस्या यह भी है कि जिन ग्रीक लेखकों के आधार पर भारतीय इतिहास को लिखा जा रहा है, वह अत्यंत भ्रामक और झूठ पर आधारित है। उदाहरण के लिए मेगास्थनीज का इंडिका उपलब्ध नहीं है, परंतु टसाइस की इंडिका तो उपलब्ध है। उसे पढ़िए, झूठ का पुलिंदा है। इसी प्रकार टोलेमी और अन्यों की हालत है। स्थिति तो यह है कि भारतयात्री के नाम से प्रसिद्ध कॉस्मॉस अपने जीवन में कभी भारत नहीं पहुँचा। इसलिए ग्रीक और यूरोपीय स्रोतों को पढ़ने में कोई बुराई नहीं है, परंतु उन पर आँख मूंद कर विश्वास करने की बजाय अत्यंत सावधानीपूर्वक उनका निरीक्षण किया जाना चाहिए।

पाँचवीं शर्त

भारत को समझने की पाँचवीं शर्त यह होगी कि भारत को उसके मौलिक स्वरूप में पढ़ा, जाना और समझा जाए। संस्कृत की परंपरा को जाने बिना कोई संस्कृत ग्रंथों के अंग्रेजी अनुवाद पढ़ कर उसके आधार पर भारत को समझना चाहेगा, तो वह बड़ी गलती करेगा। यही गलती रोमिला थापर वगैरह ने की है। इसी प्रकार वेदों में से इतिहास निकालने की परंपरा भारतीय परंपरा नहीं है। वेद इतिहास का आधार नहीं हैं, वे ज्ञान-विज्ञान का आधार तो हैं, परंतु इतिहास का नहीं।

भारत को समझने की और भी कई शर्तें हो सकती हैं। परंतु यदि हम उपरोक्त चार बिंदुओं का ध्यान रखे बिना भारत को समझने का प्रयास करेंगे तो भटक जाएंगे। फिर हम सात हजार वर्ष पहले त्रेता युग बना बैठेंगे और वैदिक ऋषियों को दलित आदि बता बैठेंगे। इससे भारत को समझना तो कठिन हो ही जाएगा, वैदिक ऋषियों की परंपरा के साथ भी बड़ा अन्याय हो जाएगा। ■

प्रदूषणः सामाजिक-मानसिक संदर्भ

सोमदत्त शर्मा
उपाध्यक्ष, भारतीय शिक्षण मंडल,
दिल्ली प्रांत

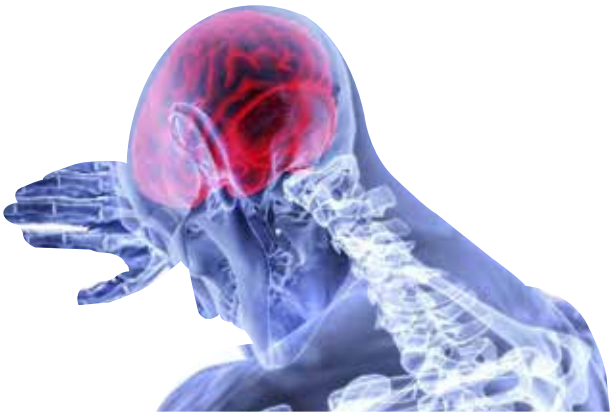

पानी अपने स्वाभाविक स्रोत से बाहर आता है तो उसमें स्वाभाविक रूप से अपनी जमीन के पोषक तत्व समाहित रहते हैं। उस पोषकता के कारण ही वह पीने योग्य बनता है। स्वाभाविक पोषकता के कारण ही वह सिंचाई तथा दूसरे कामों के लिये उपयुक्त होता है। यदि इस स्वाभाविक स्रोत से निकले पानी में बाहर से कुछ ऐसी चीज मिला दी जाय जो उसकी स्वाभाविक पोषकता को नष्ट करती हो, तो हम कहते हैं कि पानी प्रदूषित हो गया है। 'जीवन' और 'विचार' के बारे में भी यही घटित होता है।

व्यक्ति जहां पैदा होता है, उस परिवेश में वह जीवन जीने की कला सीखता है। इस कला का स्वरूप जीवन के नियामक घटक तत्वों के प्रति व्यक्ति के रिश्तों से निर्धारित होता है। उदाहरण के लिये 'अर्थववेद' का एक मंत्र है, जिसमें कहा गया है कि ''पृथ्वी मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूं'' (माताभूमि पुत्रो अहं पृथिव्याः)। हम जानते हैं कि वेद भारतीय विचार दृष्टि के आदि ग्रंथ हैं और इनमें भारतीय चिंतनदृष्टि का चरमोत्कर्ष विद्यमान है। यह चिंतनदृष्टि विभिन्न माध्यमों से 'लोक' में आती है। 'लोक' अपनी तरह से इस विचार की परीक्षा करता है और अंततः इस दृष्टि को सर्वहितकारी मानकर अंगीकार करता है और अपने रोजमर्रा के जीवन से लेकर तमाम विशिष्ट अवसरों पर इसे प्रयुक्त करता है।

एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। ब्रज क्षेत्र में शादी-विवाह जैसे शुभ अवसरों पर सबसे पहले 'नौबत' गायी जाती है। 'नौबत' ब्रज का पारंपरिक संस्कारगीत है। इस संस्कारगीत में बनाया गया है कि शादी-विवाह के अवसर पर 'धरती माता के दरबार' में नौबत बज रही है। 'नौबत' यानी मंगलवाद्य। इसी तरह घर की शादी के अवसर पर उत्पन्न स्वाभाविक उल्लास में देवी-देवताओं, मसान-मसानी, पीर-सैयद आदि शामिल होते हैं और सबके दरबार में नौबत बज रही है। इस संसारगीत में प्रकृति के अन्य घाट जैसे गंगा-यमुना जैसी नदियों तथा सूर्य-चंद्र जैसे प्रत्यक्ष देवताओं के दरबार में भी नौबत बजने की बात कही गयी है। मंगल अवसरों पर गणेश, शंकर, विष्णु, पार्वती आदि के साथ-साथ ब्रह्मा को भी शामिल किया गया है। गुरु, गाय, तुलसी आदि भी इसमें शामिल किये गये हैं। न कोई दूसरा है, न पराया। सब अपने हैं। उत्सव में सबको शामिल होना ही चाहिये। चाहे फिर वह दृश्य हो या अदृश्य हो। यह भारतीय विचार दृष्टि का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप है। इसका प्रभाव व्यक्ति और समाज दोनों में समान रूप से देखा जा सकता है।

धरती मेरी माता है और मै इसका पुत्र हूं, इस भावना ने सभी दृश्य-अदृश्य घटक तत्वों के साथ मनुष्य समाज का एक रिश्ता निर्धारित कर दिया कि सभी अपने हैं। सहोदर हैं। सहोदर हैं इसलिये एक दूसरे की चिंता करने के लिये बाध्य हैं। फिर वह चींटी हो या स्वान, सर्प हो या मछली या हाथी। जीव धरती के नीचे हो या ऊपर। जीव का भौतिक स्वरूप चाहे मानव का हो या मानवेतर प्राणी का। व्यक्ति में यह सामान्यता इतनी प्रबल है कि रक्षाबंधन जैसे त्यौहारों पर घर के दरवाजे के दोनों ओर गेरू से जो आकृतियां काढ़ी जाती हैं या फिर 'देवोत्थान' या 'अहोई' आदि त्यौहारों पर जो आकृतियां घर की पवित्र दीवारों पर काढ़ी जाती हैं, उनमें सूर्य और चन्द्रमा आदि के साथ-साथ 'स्याऊ और स्याऊ के बच्चे भी शामिल होते हैं। मैं स्याऊ और स्याऊ के बच्चे पृथ्वी के नीचे रहने वाले जीव-जन्तुओं के प्रतीक हैं और सूर्य-चंद्र आदि के साथ इनकी भी त्यौहारों पर पूजा की जाती है।

यह सर्व-समावेशी दृष्टि भारतीय लोक का अपना वैशिष्ट्य भी है, गौरव भी।

इस विचार दृष्टि का विस्तार अनेक आयामी है। इसका प्रभाव भी दूरगामी है। लोक कलाएं इस विचार को 'रससिक्त करके उर्जा बढ़ाती हैं तो लोक-कार्य इस विचार को मूर्तरूप प्रदान करते हुये आने वाली पीढ़ियों के लिये मार्ग प्रशास्त करते हैं। इस विचार दृष्टि में वृक्ष काटने की मनाही है। इसमें ब्रह्महत्या का पाप लगता है। इस पाप से मुक्ति का एक ही उपाय है कि एक वृक्ष के बदले 100 वृक्ष लगाये जायें। पर्यावरण संरक्षण का इससे अधिक प्रभावी और जीवंत रूप कहीं मिलेगा? यहां जीव हत्या जघन्य पाप है। सृष्टिचक्र के संरक्षण का इससे बड़ा कोई उपाय दिखाई देता है? नहीं। यही तो आज की भाषा में 'ईको सिस्टम' है।

इसी विचार दृष्टि ने जिस 'जीवन शैली' को जन्म दिया, उसी को 'धर्म'

कहा गया। इसी विचार दृष्टि से धर्म के दस लक्षण निर्धारित किये गये-

धृतः क्षमा दमोअस्तेयं शौचं इन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यं अक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम।

धैर्य, क्षमा, कामनाओं का दमन, चोरी न करना, मन और बाहरी वातावरण की शुचिता, इंद्रियों पर नियंत्रण, बुद्धि, विद्या, सत्य का आचरण तथा क्रोध न करना-इन दस लक्षणों का संबंध जीवन जीने की कला से ही तो है। इसी आधार पर कहा जाता है कि धर्म व्यक्तिगत रूप से धारण किया जाता है, लेकिन इसका प्रतिफलन सामाजिक होता है।

वस्तुतः यह उस जल स्रोत की छोटी सी बानगी है, जिसमें जीवन की स्वाभाविक शक्ति विद्यमान है। इसमें व्यक्ति, समाज, प्रकृति तथा परमेष्टि सबके अंतरसंबंधों की विशद व्याख्या समाहित है। इसमें जीवन का विस्तार भी है। जीवन की मिठास भी। वस्तुतः यह ऐसे जीवन की संकल्पना है जो स्वयं तो जीवित रहता ही है, जहां-जहां इसकी विद्यमानता है, वहां भी जीवन की प्रतिष्ठा करता है।

अब, आइये, इस स्वाभाविक जीवन-जल स्रोत में पश्चिमी विचार दृष्टि की मिलावट करके देखें।

भारतीय दृष्टि से देखें तो यहां सामाजिक संरचना की धुरी है-परिवार। इसमें पति है, पत्नी है, बच्चे हैं। लेकिन बुजुर्गों का महत्व अप्रतिम है। पति-पत्नी सिर्फ स्त्री और पुरुष नहीं हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। पत्नी से पृथक पति की सत्ता निरर्थक है। इसी तरह पति से पृथक स्त्री की सत्ता डाल से टूटे पत्ते से अधिक नहीं रहती। इसी कारण स्त्री और पुरुष सत्ता के बीच 'अहं' को कोई स्थान नहीं है। इसलिये भारतीय परिवार व्यवस्था सामाजिक स्थायित्व के लिये अनिवार्य संरचना रही है। ऐसी समाज व्यवस्था को यदि फ्रांस की विचारक-दार्शनिक सिमौन द बोवुआर की नजर से देखा जाय तो गलत निष्कर्ष पर पहुंचना अनिवार्य होगा। क्योंकि वहां स्त्री सशक्तिकरण के नाम पर स्त्री और स्त्रीत्व के अहं को प्रमुखता से उभारने का प्रयास किया गया है। परिणाम वहां समाज के स्थायित्व के लिये जरूरी परिवार व्यवथा छिन्न-भिन्न है। सामाजिक अस्तित्व की कल्पना ऐसे देशों में कठिन है।

भारत में परिवार है, इसलिये रिश्ते हैं। अलग-अलग रिश्तों के लिये भाषाओं में अलग-अलग नाम हैं। उनकी अलग-अलग मयार्दाएं भी हैं। पश्चिम का भाषा कोष इस दृष्टि से दरिद्र ही कहा जायेगा। परिवार नहीं है, इसलिये बच्चों की देखभाल के प्रति सीमित दृष्टि है। इसलिये जीवन के प्रति बहुत रचनात्मकता का विकास पश्चिम में अभी तक नहीं हो सका। पीढ़ियों में विक्षोभ, हिंसा, अनियंत्रित यौनाचार पश्चिमी समाज की विशेषता बन चुके हैं।

भारतीय चिंतन दृष्टि में मान्यता रही है कि प्रकृति में जीवन-यापन के लिये सब कुछ है, लेकिन असीमित मात्रा में नहीं है। इसलिये इन संसाधनों का उपयोग मितव्ययिता के साथ किया जाना अपेक्षित है, जबकि पश्चिम के देशों में जिस जीवन शैली का विकास हुआ है उसमें 'यावत जीवेत, सुखम जीवेत' का भाव प्रमुख है। इसलिये हाल के दिनों 'जलवायु परिवर्तन' संबंधी वैश्विक सम्मेलनों में अमेरिका जैसे विकसित देश' कार्बन उत्सर्जन' में कमी लाने के मसले पर हमेशा पीछे हट जाते हैं, यह जानते हुये भी कि कार्बन उत्सर्जन में बढ़ोत्तरी मानवीय जीवन के लिये गंभीर खतरा बन चुकी है।

जिन विचारधाराओं का मानना है कि उन्होंने वैज्ञानिकता का अनुसरण किया है, उन्होंने विज्ञान के स्वभाव को ही अपना लिया है। विज्ञान का स्वभाव है कि वह चीजों को सिलसिलेवार तरीके से खण्ड ही खण्ड करके देखता है। लेकिन विज्ञान का अंतिम लक्ष्य वही है जो अध्यात्मवादियों का है, यानी जीवन के अंतिम सत्य की खोज। एक खंड-खंड करके वहां तक पहुंचना चाहता है, दूसरा समग्र में मूल तत्व के दर्शन का अभयास करता है। लक्ष्य दोनों का एक ही है। लेकिन जिन विचारधाराओं ने विज्ञान की क्रियाशीलता को बाहरी तौर पर स्वीकार कर लिया है, भारत में स्त्री-विमर्श और दलित विमर्श जैसे अवधारणाएं उसी की देन हैं। वैश्विक स्तर पर विभिन्न प्रकार के अंतर्राष्ट्रीय दिवसों का आयोजन उसी का दूसरा रूप है। इन खंडित अवधारणाओं के कारण संपूर्ण समाज के विकास में स्त्रियों के योगदान के बजाय संपूर्ण समाज में 'स्त्रियों की स्थिति' के बारे में सोचना अपरिहार्य हो जाता है। 'दलित' को समाज की समग्रता के स्वरूप में न देखकर उसे इस तरह व्याख्यायित किया जाता है, मानो एक समाज है वह अमुक-अमुक घटकों से मिलकर बना है। ये ऐसे घटक हैं जिनका संपूर्ण समाज से अलग अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व है। इस तरह के विचारों की सामाजिक विघटन के रूप में अंतिम परिणति होती है, जबकि जीवन को समग्रता में देखने की प्रवृत्ति समाज और जीवन के विकास में प्रत्येक के सवोर्कृष्ट योगदान को रेखांकित करते हुये एक-दूसरे के परिपुष्ट करती चलती है। भारतीय परिवार व्यवस्था इसका उदाहरण है। यहां परिवार एक है, किंतु पति-पत्नी दोनों की भूमिकाएं स्पष्ट और सुनिश्चित हैं। वैयक्तिक स्तर पर पति का काम अथोर्पार्जन है, लेकिन परिवार के भरण-पोषण पर इसे किस तरह खर्च करना है, इसकी जिम्मेदारी पत्नी की होती है। लेकिन जब सामाजिक दायित्वों की बात आती है तो दोनों मिलकर तय करते हैं।\

वस्तुतः भारत एक भौतिक इकाई ही नहीं है, बल्कि इसका एक वैचारिक अधिष्ठान भी है। इस वैचारिक अधिष्ठान को समझने की और पुनः प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है। समय की रफ्तार तेज है। तमाम विचारों के बवंडर उठ रहे हैं। इसमें भारतीय जीवन-जल भी प्रदूषित हो रहा है। लेकिन जिस तरह उत्तर आधुनिकतावादियों ने कविता, विचार, इतिहास तथा सामाजिक संरचनाओं की समाप्ति की घोषणा कर दी है, वहीं भारत आज भी ऐसे विचार-जल से परिप्लुत है जो अपने मूल स्रोत से संजीवनी लेता है और भारतीय ही नहीं वैश्विक जीवन संरचनाओं को अभिसिंचित कर रहा है। यहां विचार, कविता, इतिहास आदि किसी का अंत नहीं हुआ है, बल्कि समयानुरूप संशोधन के साथ संवर्द्धित होता हुआ जीवन के परम चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर है। यह सब इसी विचार से संभव है, जिसमें कहा गया है कि धरती माता है और मैं इसका पुत्र हूं।

पूर्व राष्ट्रीय समन्वयक आकाशवाणी लोकसंपदा संरक्षण महापरियोजना

पूर्व संपादक दक्षेस संस्कृति

(दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन के सदस्य देशों के साहित्य और संस्कृति को समर्पित पत्रिका)

नैतिक बल, संसाधन एवं भ्रष्टाचार

रेवती रमण पाण्डेय

किसी भी राष्ट्र की तरक्की वहां के संसाधनों और नैतिक बल पर निर्भर करता है। कालांतर में देखा जाय तो व्यक्तिवादी सोच राष्ट्रवादी सोच पर भारी पड़ा है। ऐसा नैतिक मूल्यों के पतन के कारण होता है। जो दोनों, व्यक्तियों और राष्ट्र के अस्तित्व को ही संकट में डाल देता है। यहां यह कहना वाजिब होगा कि विपरीत आचरण के मूल्यों से धन की आवयकता बढ़ती है। फिर लालसा भी उतनी ही तीव्रगति से बढ़ने लगती है। नतीजतन सरकारी सेवक राजकोष के धन का उपयोग स्वयं के लिये अन्य तरीकों से करने लगते हैं। इसलिये सर्वप्रथम सरकारी सेवकों पर नियंत्रण एवं निगरानी अति आवश्यक हो जाता है।

कभी सोने की चिड़िया कहे जाने वाले भारतवर्ष के सामने आज दोनों ही प्रकार के संकट विद्यमान हैं। पहला नैतिक बल एवं संसाधनों का अभाव तो दूसरा सुरसा की तरह मुंह फाड़े भ्रष्टाचार। महान अर्थशास्त्री कौटिल्य ने तो 2300 साल पहले ही कह दिया था कि जिस प्रकार जीभ पर रखी शहद का स्वाद बिना उसे निगले नहीं लिया जा सकता, ठीक उसी प्रकार सरकारी तंत्र के लोग राजकोष से कुछ न कुछ हासिल कर ही लेते हैं।

दूसरे शब्दों में कहें तो राज्य के कर्मचारी पानी में डूबे उस मछली की तरह हैं, जिन्हें कोई नहीं जानता कि वे कब और कितना पानी पियेंगी। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि राष्ट्र के निर्माण में जितनी बड़ी भूमिका सरकार की होती है, उससे कहीं अधिक वहां की जनता की होती है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है। यहां हर जाति व धर्म का एक उत्तम समावेश है, जो दुनिया में कहीं देखने को नहीं मिलता। सेकुलर शब्द हमारे राष्ट्र का सबसे चर्चित शब्द है, इसका मतलब एक ऐसे विश्वास की सरकार जो शिक्षा, समाज आदि पर धर्म का प्रभाव नहीं होने दे। लेकिन इतिहास के पन्ने इस सच्चाई से अलग हैं।

सत्तालोलुप राजनीतिज्ञों ने सेकुलरिजम को अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया। नतीजा हमारी सोच राष्ट्रवादी न होकर व्यक्तित्ववाद की तरफ बढ़ने लगी। राष्ट्रहित के बजाय स्वयं के हित को तरजीह दी जाने लगी। समग्र विकास की सोच को तिलांजलि देते हुये हमने परिवार और मनुष्य के विकास तक अपनी सोच को सीमित कर लिया। यही कारण है कि आज सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय की सोच टुकड़े-टुकड़े गैंग की भेंट चढ़ गयी है। ऐसे में अराजकता और भ्रष्टाचार तो बढ़ना ही था। यही कारण है कि सदियों से अपनी संस्कृति के बदौलत विश्व के मानस पटल पर अमिट छाप छोड़ने वाला भारत आज संसाधनों की कमी और भ्रष्टाचार को झेल रहा है। हाल ही में एक विदेशी मेहमान के भारत दौरे को बाधित करने की कुछ असामाजिक तत्वों के मंसूबे को पूर्ण कामयाबी तो नहीं होने दिया गया, लेकिन उस घटना से यह तो साफ हो गया कि एकता के जिस नैतिक बल का हम गर्व करते हैं, वो सिर्फ एक दिखावा है। नही तो किसी भी जाति, धर्म का भारतीय काले धन के पोषण को आत्मसात न करता और ना ही दंगा-फसाद एवं देश प्रदेश जैसे कार्य में हिस्सा लेता। यहां यह कहने में तनिक भी हिचक नहीं है कि जिस देश में हर हाथ

को काम न मिले, वहां का वातावरण अशांत रहेगा ही। चंद पथभ्रष्ट लोगों की वजह से जब समाज में लूट खसोट, चोरी, बेईमानी का मार्गदर्शन किया जाता है तो उसकी जड़ें समाज के आखिरी व्यक्ति तक पहुंचती हैं, जिसे निर्मूल समाप्त करना आसान नहीं होता, ऐसे में सरकार चाहे जितनी भी अच्छी सोच क्यों न रखे, राष्ट्र के उत्थान और अस्मिता को खतरा हमेशा बना रहता है।

आज देश को आजाद हुये सात दशक से अधिक हो गया है। हम भारतीयों को इस देश का नागरिक होने पर गर्व होना चाहिये। हमारी संस्कृति अनेकता में एकता वाली रही है। गंगा-जमुनी तहजीब की मिसाल वाली रही है। ऋषि-मुनियों सूफी-संतों की त्याग और तप वाली रही है, जिसका विश्व आज भी लोहा मानता है। ऐसे में भ्रष्टाचार हमारी सारी अच्छाइयों को धूमिल कर देता है। हमें यह सोचने पर विवश होना पड़ता है कि लंबे समंय से देश की निश्छल जनता को आदर्श और ईमानदारी का भाषण या प्रवचन की घुट्टी पिलायी जाती है। आखिर ये कौन लोग है। संशय अभी भी बरकरार है।

आज जब भारत भ्रष्टाचार के अंतर्राष्ट्रीय आईने में अपना चेहरा देखता है, तो शर्मसार होना पड़ता है। ट्रांसपैरेंसी इंटरनेशनल के एक आंकड़े के मुताबिक भारत 180 देशों की करप्शन सूची में 78वें स्थान पर है। जो 6 साल पहले 81वें स्थान पर था। शासक अगर ईमानदार है और उसकी नियति नेक है तो ऐसे आंकड़ों में सुधार की गुंजाइश हमेश बनी रहती है और इसमें हाल फिलहाल सफलता भी मिली है। इस रिपोर्ट में सोमालिया को सबसे भ्रष्ट और डेनमार्क को ईमानदारी में पहला स्थान दिया गया है। आखिर ऐसा क्यों, ऐसा इसलिये कि हमारे नैतिक मूल्यों का पतन हुआ है।

हम राष्ट्र के चल-अचल संसाधनों का बेरहमी से दोहन करते है और सरकारी राजकोष का हो सकने वाला भरपूर दुरुपयोग करते हैं। यही कारण है कि राजनीतिक फिजा बदलते ही राष्ट्र के संसाधनों की धारा विपरीत हो जाती है। सार्वजनिक हित में आने व जाने वाले धन की दिशा बदल जाती है। सरकारी राजकोष के समानांतर काले धन पर सरकार का नियंत्रण नहीं हो पाता। राजकोष पर भार बढ़ने

सत्तालोलुप राजनीतिज्ञों ने सेकुलरिजम को अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया। नतीजा हमारी सोच राष्ट्रवादी न होकर व्यक्तित्ववाद की तरफ बढ़ने लगी। राष्ट्रहित के बजाय स्वयं के हित को तरजीह दी जाने लगी। समग्र विकास की सोच को तिलांजलि देते हुये हमने परिवार और मनुष्य के विकास तक अपनी सोच को सीमित कर लिया। यही कारण है कि आज सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय की सोच टुकड़े-टुकड़े गैंग की भेंट चढ़ गयी है।

लगता है और राष्ट्र गर्त में डूब जाता है।

यही नहीं आयात-निर्यात का अनुपात भी बिगड़ने लगता है। सार्वजनिक आर्थिक हित पूरे नहीं हो पाते। तब असंतोष पैदा होता है और फिर भ्रष्टाचार किसी भी हद तक पहुंचने को आतुर दिखता है। ऐसी स्थिति में समाज में दूषित मूल्य स्थापित होने लगते है। काली कमाई वालों की इज्जत बढ़ जाती है, जब समझना चाहिये कि समाज का पतन अवश्यंभावी हो गया है।

अगर हम सीधा और सपाट बात करें तो समाज में आर्थिक असमानता अविश्वास को पैदा करती है। भेदभाव को बढ़ावा मिलता है और सामाजिक समरसता नष्ट होती है। आपसी कटुताको विस्तार मिलता है और राष्ट्र के प्रति गौरव, श्रद्वा एवं उसकी भक्ति में कमी देखने को मिलती है और रोजगार के अवसर क्षीण होने लगते हैं तथा जीवनयापन महंगा हो जाता है।

अतः देश के शासक-प्रशासक व राजनीति जुड़े लोगों को चाहिये कि वे राष्ट्र की संप्रभुता को कायम रखते हुये भ्रष्टाचार का परित्याग करें। सरकारी खजाने को अपनी ना बपौती समझे और न ही खैरात बांटें। हम सभी का संविधान सम्मत काम करना ही देश के प्रति सच्ची श्रद्वा होगी, जिसमें जन और तंत्र दोनों का हित निहित है, बाकी सोशल इंजीनियरिंग का काम जनता खुद ब खुद कर लेती है। ■

विश्व पटल पर सनातन धर्म

प्रमोद कुमार मिश्रा
विशेषज्ञ दक्षिण पूर्व एशिया
सनातन संस्कृति

दुनिया की प्रमुख सभ्यताओं की अगर हम बात करें तो सिंधु घाटी सभ्यता जिसमें हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, लोथल इत्यादि हैं। पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर पता चलता है कि उस समय भी हिन्दू सनातन धर्म था। यदि क्षेत्रफल के आधार पर देखा जाय तो वर्तमान इराक, ईरान, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, नेपाल, भारत, श्रीलंका, बांग्लादेश इत्यादि भारतवर्ष कहलाता था। यदि हम इतिहास में और पीछे जाते हैं तो पाएंगे महाभारत काल में संपूर्ण विश्व मे भारतवर्ष एक अलग महत्व रखता था।

लेकिन समय के साथ-साथ आज भारतवर्ष सिकुड़कर एक छोटे से भूखंड में रह गया। विद्वानों ने सही ही कहा है, जो व्यक्ति अपने इतिहास से जितना दूर रहता है उसका भविष्य भी उससे उतना दूर हो जाता है। यदि इसका सफल उदाहरण देखना हो तो कभी ईरान, इराक, एवं अफगनिस्तान से लेकर कम्बोडिया, लाओस, जावा, सुमात्रा, तक भगवान बुद्ध के बहुत से मन्दिर व मूर्ति थे। दुर्भाग्यवश मुस्लिम आक्रांताओं, वहां की स्थानीय सरकार, एवं भावी पीढ़ियों को अपना इतिहस न बता पाने के कारण आज उनके मंदिर व मूर्ति नाममात्र के बचे हैं। यदि हम इन्हें गहनता से अध्ययन करें तो हमे ध्यान में आएगा कि लोग व्यक्तिगत स्वार्थवश समकालीन परिस्थियों के कारण अपना धर्म तो परिवर्तन कर लिये, लेकिन उनकी सांस्कृतिक विरासत आज भी उनके अंदर देखने को मिल जाती है। इसका जीता जगता उदाहरण थाईलैंड, कम्बोडिया, लाओस, म्यांमार, इंडोनेशिया, श्रीलंका इत्यादि है।

थाईलैंड के राजा को राम का अवतार माना जाता है। थाईलैंड के पूर्व राजा भूमिबल अतुल्यतेज जिनकी मृत्यु 13 अक्टूबर 2016 को हो गयी। जिन्हें रमानौ (प) कहा गया। यहां आज भी राजतन्त्र है और राजा को भगवान राम के नाम पर रामा कहा जाता है। वहां की पुरानी राजधानी भी अयोध्या थी। (कालान्तर में राजधानी अयोध्या से हटाकर बैंकाक लायी गयी) परन्तु उनके अवशेष आज भी वहां देखने को मिल जाते है। यात्री दृष्टि से देखा जाय तो अयोध्या थाईलैंड के प्रमुख दर्शनीय स्थलों में से एक है। प्रमुख मेट्रो स्टेशन जहां लगभग 24 घंटे चहल पहल रहती है उसका नाम भी सम्राट अशोक के नाम पर अशोका रखा गया है।

स्वर्ण भूमि हवाई अड्डे पर समुद्रमंथन की सृजनात्मक कलाकृति

वहां का मुख्य हवाई अड्डा जिसका नाम भी स्वर्ण भूमि एरपोर्ट है। मुझे देखकर आश्चर्य तब हुआ जब मैंने देखा समुद्रमंथन (देवता एव दानव के बीच अमृतपान की घटना ये भारतीय धार्मिक कथाओ में मिलती है) की सृजनात्मक कलाकृति वहां के हवाई अड्डे की शोभा बढ़ा रही है। थाईलैंड में हर दुकान, कारखाने, होटल, सरकारी दफ्तर में भगवान ब्रम्हा व भगवान गणेश की मूर्ति देखने को मिल जाती है।

अशोका मेट्रो के पास जहां 24 घंटे भगवान ब्रम्हा की प्रार्थना की जाती है

इतना ही नहीं वहां के राजकीय आवास मे (वाटअरुन) भगवान बुद्ध की लेटे हुए (सोने के रंग की) प्रतिमा वहां की शोभा बढ़ा रही है। साथ में सटे सामान्य हाल में भगवान राम के पैदा होने के पहले से लेकर लंका विजय

के उपरांत तक की सारी घटनाओं को चित्रों के माध्यम से दशार्या गया है।

जिस प्रकार भारत में विवाह के समय उपनयन संस्कार (जनेऊ संस्कार) होता है और विवाह के एक वर्ष तक किसी अशुभ कार्य मे जाना बुरा माना जाता है, ठीक उसी प्रकार थाईलैंड में भी विवाह के एक माह पहले से लेकर विवाह तक व्यक्ति को वाट (थाई मंदिर) में रहना होता है, जिससे उसके अंदर एक सात्विक विचार परिवार के प्रति बना रहे। दफ्तर मे थाई व्यक्ति दफ्तर में आते व जाते समय एक दूसरे का हाथ जोड़कर अभिवादन करते हैं। लेकिन यदि कोई विदेशी व्यक्ति का भी अभिवादन करना होता है तो हाथ जोड़कर ही करते हैं। अगर व्यक्ति हाथ मिलने को कहता है तो हाथ मिलाने में भी नहीं हिचकिचाते।

राजकीय आवास में भगवान बुद्ध की प्रतिमा के साथ संमूर्ण रामायण को चित्रों के माध्यम से दशार्या गया है

वैसे तो थाईलैंड का राष्ट्रीय धर्म तो बौद्ध धर्म है, लेकिन ज्यादातर थाई व्यक्ति भगवान गणेश, भगवान शिव, व भगवान ब्रम्हा को अपना आराध्य देव मानते हैं। उनका कहना है जब हमें भौतिक सुख के लिए प्रार्थना करनी

होती है तो हम इन देवताओं (गणेश, शिव, ब्रम्हा) की आराधना करते हैं और अध्यात्मिक उत्थान के लिए भगवान बुद्ध की आराधना करते हैं।

भगवान बुद्ध की ध्यान में विभिन्न मुद्रायें

भारत ने कभी भी किसी देश पर उसे गुलाम बनाने के लिए आक्रमण नहीं किया। उदाहरण के लिए अशोक और समुद्रगुप्त काल में भारत से लेकर कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा, इंडोनेशिया इत्यादि तक फैली था। कम्बोडिया कभी हिन्दू देवी देवताओं का गढ़ हुआ करता था। आज भी अंगकोरवाट में भगवान विष्णु और शिव के प्रमुख मंदिर हैं। इसके विस्तार का निष्कर्ष इस बात से लगाया जा सकता है। ये मंदिर लगभग 402 एकड़ में फैला

हुआ है। अपनी विशालता और सांस्कृतिक विरासत की वजह से संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को (न्छम्ब्ब)) में प्रमुख स्थान रखता है। जिसे भारतीय सम्राट सूर्यवर्मन ने बनवाना शुरू कराया और सम्राट राज्यवर्मन के कार्यकाल मे पूरा हुआ।

अंगकोरवाट मंदिर का विहंगम चित्र

इस मंदिर को देखने और भगवान विष्णु के दर्शन करने के लिये हर वर्ष लाखों भक्त भारत समेत कई अन्य देशों से आते हैं। इसे बनाने के लिये

50 से एक करोड़ रेत के पत्थर का इस्तेमाल किया गया है। प्रत्येक पत्थर का वजन डेढ़ टन है। इस मंदिर की दीवारों पर रामायण और महाभारत की कहानियां भी लिखी हुई हैं और देवताओं एव असुरों के अमृतमंथन का उल्लेख भी किया गया है। आज भी यहां के लोग अपने आपको भारत की संतान मानते हैं। उनका मानना है कि भौगोलिक दृष्टि हम देश बदले हैं आज भी हमारे पूर्वज भारतीय ही हैं।

सम्पूर्ण दुनिया को विदित है कि इंडोनेशिया एव भारत के सांस्कृतिक संबंध कितने मधुर हैं। हालांकि वहां का बहुसंख्यक समाज अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के चलते अपना धर्म तो परिवर्तन कर लिया, लेकिन ये लोग आज भी अपनी सांस्कृतिक विरासत संभालकर रखे हैं। इनके देश का राष्ट्रीय प्रतीक गरुण है। बाली द्वीप जो कि यात्रियों का प्रमुख दर्शनीय स्थल है, वहां मुख्यतः हिन्दू मंदिर हैं जिसमें (तन हालेट मंदिर, पुरातमन सरस्वती

कट्टरपंथियों के प्रभाव से मुस्लिम एवं ईसाई समाज अपनी जड़ों से दूर हुआ है। इसीलिए भारतवर्ष में इस समाज के लोग उतना विकास और समृद्धि नहीं प्राप्त कर सके। अतः आज इस समाज को यह समझना चाहिए कि वह अपनी हजारों साल पुरानी सांस्कृतिक विरासत से जब तक नहीं जुड़ेगा, तब तक उसके विकास और समृद्धि की राह नहीं खुलेगी । अतः अब बहुसंख्यक समाज को चाहिए की वह भी अपनी जड़ों की तरफ वापस लौटे।

मंदिरपुरावेस का हमन्दिर, सिद्धेसरी शिव मन्दिर, परमानन्द मन्दिर) इत्यादि। ये सभी मंदिर 11वीं शताब्दी से लेकर 12वीं शताब्दी के बीच बनाये गये थे। आज भी वहां के मुस्लिम समाज एक तरफ तो नमाज पढ़ता है, तो दूसरी तरफ भगवान शिव पर रुद्राभिषेक भी करता है। यहां हिन्दू परम्पराओं को काफी महत्व दिया जाता है। यहां के 20 हजार के करेंसी में भगवान गणेश का दर्शन हो जायेगा।

बाली द्वीप एवं सुमात्रा द्वीप पर बहुसंख्यक मुस्लिम समाज (आज जो अपना धर्मपरिवर्तन कर लिए हैं) वो भी रामायण में भगवान राम, हनुमान, रावण, लक्ष्मण इत्यादि का किरदार निभाते हैं।

भगवान गणेश की मूर्ति इंडोनेशिया की करेंसी पर

जावा इंडोनेशिया का एक प्रमुख द्वीप है। जहां लगभग 60 फीसदी आबादी बसती है। 13वीं एवं 15वीं शताब्दी के बीच यहां महापाहित नाम से हिन्दू साम्राज्य फलाफूला, जिससे यहां की संस्कृति, भाषा और भूमि पर हिन्दू संस्कृति की अमिट छाप दिखाई देती है। पुराने शहर एव दुकानों के

नाम भी संस्कृत भाषा में दिखना यहां सामान्य बात है। यहां कई मुस्लिम नाम विद्या, प्रिया, कृष्णा, विष्णु भी मिल जाता है। इंडोनेशिया के महान नेता का नाम महाभारत के किरदार कर्ण से लिया गया है। इंडोनेशिया के 5वें राष्ट्रपति का नाम भी मेधावती सुकणोर्पुत्री था।

इंडोनेशिया के लोग अपने धर्म और संस्कृति को अलग अलग रखते हैं और इसे अपनी संस्कृति का हिस्सा मानते हैं। वे अपने बच्चों का नामकरण उस रूप में करते हैं जिस रूप में उनके भविष्य को देखना चाहते हैं। उदाहरण के तौर पर बलवान बलवान ब्यक्ति का नाम भीम सदाचार व्यक्ति लिए युधिष्ठिर,राम इत्यादि।

इंडोनेशिया में सबसे बड़ा बाली हिंदू मंदिर, माता

मंदिर बेसाकी में पूजा करते मुस्लिम समुदाय

फिजी में कभी बहुसंख्यक रूप में ब्रिटिश सरकार मजदूरी के लिए उत्तर भारत से (उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब, बंगाल, हरियाणा) इत्यादि से मजदूर ले गयी थी, जो कभी भारत वापस नहीं आये। आज वे लोग उस देश के प्रतिष्ठित लोगों में से है। लेकिन आज इतने वर्षो के बाद उनकी नयी पीढ़ी अपनी जड़ों को ढूढ़ते हुए भारत की तरफ रुख कर रही है।

भारतवर्ष में रहने वाले समस्त नागरिकों की सांस्कृतिक जड़ें सनातन धर्म से जुड़ी है। दुर्भाग्यवश मुस्लिम एवं ईसाई आक्रांताओ द्वारा कुछ सनातन धर्म के अनुयायियों को तलवार और धन के बल पर मुस्लिम एवं ईसाई मजहब से जोड़ा गया। तत्पश्चात कट्टरपंथियों के प्रभाव से मुस्लिम एवं ईसाई समाज अपनी जड़ों से दूर हुआ है। इसीलिए भारतवर्ष में इस समाज के लोग उतना विकास और समृद्धि नहीं प्राप्त कर सके। अतः आज इस समाज को यह समझना चाहिए कि वह अपनी हजारों साल पुरानी सांस्कृतिक विरासत से जब तक नहीं जुड़ेगा, तब तक उसके विकास और समृद्धि की राह नहीं खुलेगी। ■

संस्कृत भारत का अभिज्ञान

डॉ. कृष्ण चंद्र पांडे
सलाहकार, लोकसम्पदा संरक्षण
महापरियोजना, आकाशवाणी

भाषा की वैज्ञानिकता इससे सिद्ध होती कि उसमें नवीन शब्दों को गढ़ने की कितनी क्षमता है। संस्कृत के विषय में यह कहा जा सकता है कि संस्कृत भाषा भारत की सभी भाषाओं की प्राण शक्ति है। भारत की प्रायः सभी भाषाएं संस्कृत भाषा से अनुप्राणित हैं। इसीलिए भाषाई विविधता के बाद भी संस्कृत भाषा के प्रति संपूर्ण देश में एक स्वर दिखाई देता है। उसका कारण यही है कि सभी भाषाओं में संस्कृत शब्दों का प्राचुर्य मिलता है।

किसी भी राष्ट्र की पहचान उसकी भाषा एवं संस्कृति से होती है। भाषा ही किसी राष्ट्र की शक्ति होती है। भाषा ही समाज को अपने राष्ट्र के साथ जोड़ती है। भाषा के कारण न केवल संस्कृति का संरक्षण होता है, अपितु राष्ट्र के साथ अनन्य संबंध भी स्थापित होता है। विश्व के अनेक राष्ट्र जो अपने राष्ट्र के प्रति समर्पित होने के कारण विश्व में उदाहरण स्वरूप जाने जाते हैं, वे अपनी भाषा के प्रति समर्पित हैं। अपनी भाषा के प्रति स्वभिमान राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान को जागृत करता है। जिसमे अपनी भाषा का स्वाभिमान नहीं है, वह अपने राष्ट्र के प्रति भी समर्पित नहीं हो सकता। ऐसा व्यक्ति मृतक समान और पशु है।

जिसको न निज भाषा तथा देश का स्वाभिमान है,
वह नर नहीं है पशु निरा और मृतक समान है।

भारत की सभी भाषाएं संस्कृत भाषा से अनुप्राणित

किसी भी भाषा की अपनी प्रकृति होती है, उसका इतिहास होता है। उसकी अपनी पहचान होती है। भाषा की व्यापकता और प्राचीनता के

साथ उसका एक वैज्ञानिक स्वरूप होता है। भाषा की वैज्ञानिकता इससे सिद्ध होती कि उसमें नवीन शब्दों को गढ़ने की कितनी क्षमता है। संस्कृत के विषय में यह कहा जा सकता है कि संस्कृत भाषा भारत की सभी भाषाओं की प्राण शक्ति है। भारत की प्रायः सभी भाषाएं संस्कृत भाषा से अनुप्राणित हैं। इसीलिए भाषाई विविधता के बाद भी संस्कृत भाषा के प्रति संपूर्ण देश में एक स्वर दिखाई देता है। उसका कारण यही है कि सभी भाषाओं में संस्कृत शब्दों का प्राचुर्य मिलता है। दक्षिण भारत की सभी भाषाओं में उच्चारण शैली संस्कृत भाषा मे समान है। मलयालम, तमिल, तेलगू, कन्नड़, उड़िया, बांग्ला आदि सभी भाषाओं में संस्कृत शब्द बहुतायत में दिखाई देते हैं। मलयालम भाषा संस्कृत प्रधान भाषा है। मलयालम साहित्य संस्कृत प्रधान साहित्य है। मलयालम साहित्य के पुराण इतिहास ग्रंथों में वाल्मीकि रामायणं, वैराग्य चंद्रोदयम, पाताल रामयणम, भीष्मोपदेशम् आदि उल्लेखनीय ग्रंथ हैं। मलयालम भाषा का प्रथम ग्रंथ उन्नीयच्ची चरितं संस्कृतनिष्ठ भाषा में है। तमिल का प्रथम ग्रंथ तोलकप्पयम, तेलगू का प्रथम ग्रंथ आंध्र महाभारतं, कन्नड़ का प्रथम ग्रंथ कविराज मार्ग संस्कृतयुक्त भाषा में है। मलयालम भाषा में संस्कृत विभक्तियों का प्रयोग मिलता है। मलयालम की मणि प्रवाल शैली पूरी तरह संस्कृतनिष्ठ है।

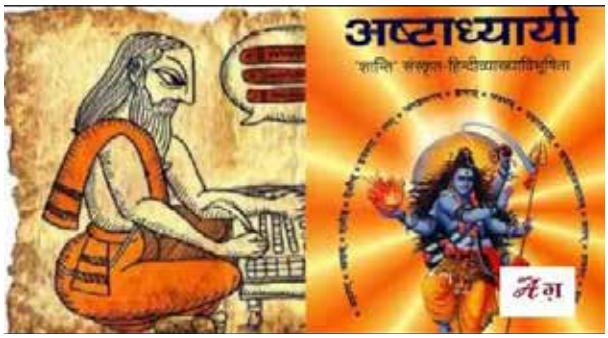

> रामायण, महाभारत जैसे ग्रंथ विश्व धरोहर के अद्भुत ग्रंथ हैं। वर्तमान में टूटते परिवार, भौतिकता में डूबा हुआ समाज, व्यक्तिगत जीवन की अशांति, जीवन में एकाकीपन इन सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान रामायण ग्रंथ दे सकता है। महाभारत के विषय में तो यहां तक कहा गया है कि जो इसमें नहीं है, वह कहीं नहीं है।

तेलगू भाषा में 80 प्रतिशत शब्द संस्कृत हैं। संस्कृत भाषा ने सम्पूर्ण देश की भाषाओं को एक सूत्र में बांधने का काम किया है। भारत की सभी भाषाओं के ग्रंथों में संस्कृत की छाया मिलती है। संस्कृत भारत की सभी भाषाओं की जननी है। सम्पूर्ण भारत की एकमात्र संपर्क भाषा संस्कृत ही हो सकती है। संस्कृत भाषा सभी भारतीय भाषाओं की जननी होने के कारण भारती नाम से भी जानी जाती है।

एकांगी नही है संस्कृत साहित्य

संस्कृत साहित्य कभी एकांगी नहीं रहा। मानव जीवन के लिए ही नहीं अपितु प्रकृति के प्रत्येक तत्त्व के कल्याण के लिए सभी नैतिक बिंदुओं का समावेश संस्कृत साहित्य में किया गया है। वैदिक साहित्य ही नहीं, अपितु लौकिक साहित्य में भी सभी बिंदुओं का चिंतन किया गया है। रामायण, महाभारत जैसे ग्रंथ विश्व धरोहर के अद्भुत ग्रंथ हैं। वर्तमान में टूटते परिवार, भौतिकता में डूबा हुआ समाज, व्यक्तिगत जीवन की अशांति, जीवन में एकाकीपन इन सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान रामायण ग्रंथ दे सकता है। महाभारत के विषय में तो यहां तक कहा गया है कि जो इसमें नहीं है, वह कहीं नहीं है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र भी समग्रता को अपने में समेटे हुए हैं। आज के राजनीतिक वातावरण में जहाँ धर्म को संकीर्णता में देखा जाता है, वहीं अर्थशास्त्र में सभी प्रकार के क्रिया विधाओं का आधार धर्म को माना है। यद्यपि कौटिलीय अर्थशास्त्र का मुख्य विषय राजनीति है, परंतु राजनीति के लिए जिन मूल्यों की आवश्यकता होती है उन सभी का निरूपण कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में किया है। अर्थशास्त्र में धर्म को प्रधानता दी है। आज जहां भौतिकवादी समाज अर्थ को सुख का माध्यम मानता है, कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में सुख का मूल धर्म को माना है।

उन्होंने अर्थशास्त्र के आरम्भ में ही कहा है-

सुखस्य मूलं धर्मः (चाणक्य सूत्र -1)

धर्म ने ही लोक को धारण किया हुआ है।

धर्मेण धारयते लोकः (चाणक्य सूत्र -234)

महाकवि भर्तृहरि ने धर्म से विहीन को पशु के समान बताया है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन आदि मनुष्य और पशुओं में समान होते है। धर्म ही मनुष्य को पशुओं से पृथक करता है।

आहार निद्रा भय मैथुनम च, सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम।

धर्मो हि तेषामधिको विशेषः, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।। (भर्तृहरि नीतिशतक)

धर्म ही मानव जीवन का आधार है। यह संस्कृत साहित्य से ही जान सकते हैं। संस्कृत साहित्य ही है जो विज्ञान और अध्यात्म को जोड़ता है। यह संसार धर्म की धुरी पर टिका है। धर्म ही प्रत्येक तत्त्व अपने नैतिक मूल्य से आबद्ध किये हुए है। संस्कृत साहित्य सभी नैतिक मूल्य का आगार है।

डॉ. आंबेडकर ने किया था संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रस्ताव

संविधान समिति के समक्ष डॉ. भीमराव आंबेडकर ने संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रस्ताव किया था। उन्होंने संविधान समिति में राष्ट्रभाषा एवं राज्य व्यवहार की अधिकृत भाषा से संबंधित अनुच्छेद में संस्कृत को राष्ट्र एवं राज्य व्यवहार की पयार्यी भाषा रखने के विषय

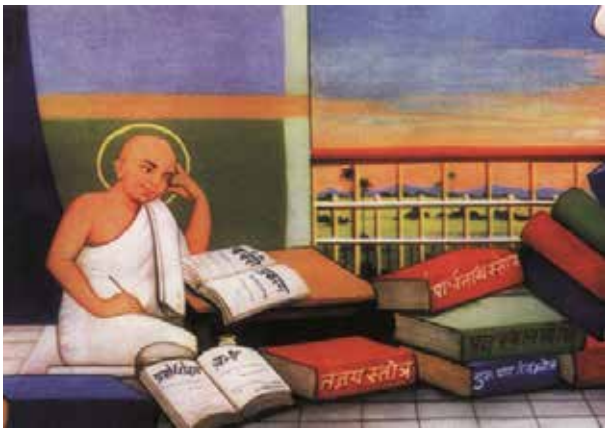

में सुझाव दिए थे। पत्रकारों ने जब इस विषय में आंबेडकर से पूछा तो उन्होंने कहा, 'what is wrong with Sanskrit'. संविधान सभा के सदस्य लक्ष्मीकांत मैत्र ने इस संशोधन का जोरदार समर्थन किया और कहा कि हिंदी जैसी किसी विशिष्ट प्रान्त की भाषा को राष्ट्र भाषा बनाने से शेष प्रान्तों में संदेह और कटुता निर्माण हो सकती है। संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाने से वह टाली जा सकती है। संस्कृत को मान्यता देकर दुनिया को हम बता देंगे कि हम अपने गौरव बिन्दुओं का कितना सम्मान करते हैं? संसार को अपनी प्राचीन संस्कृति का अध्यात्मिक संदेश देने की इच्छा रखते हैं। संस्कृत को राष्ट्रभाषा स्वीकार कर हम भावी पीढ़ी का उज्ज्वल भविष्य निर्माण कर सकते हैं। (डॉ. आंबेडकर और सामाजिक क्रांति की यात्रा -दत्तोपंत ठेंगड़ी)

राजभाषा पर केंद्रीय कक्ष में जब विविध समूहों में चर्चा हो रही थी, तब लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ कि चर्चा के समय डॉ. आंबेडकर और लक्ष्मीकांत मैत्र शुद्ध संस्कृत भाषा में चर्चा कर रहे थे। डॉ. आंबेडकर की इच्छा थी कि संस्कृत को राष्ट्र भाषा बनाने का प्रस्ताव पारित किया जाना चाहिए, परंतु बी.पी. मौर्य जैसे तरुण सदस्यों के विरोध के कारण यह संभव नहीं हो सका। बी.पी. मौर्य ने बाद में इस बात का खेद प्रकट किया कि उन्होंने अकारण ही डॉ. आंबेडकर के संस्कृत को राष्ट्र भाषा बनाने विरोध किया। (डॉ. आंबेडकर और सामाजिक क्रांति की यात्रा पृ.368)

संस्कृत के विषय में स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि संस्कृत के बिना भारत को नहीं समझ जा सकता है। उन्होंने कहा कि हर किसी को संस्कृत पढ़नी चाहिए, क्योंकि हमारी मौलिक विद्वता के रत्न इसी भंडार में छिपे हैं। मानव के उच्चतम दर्शन बिन्दु इसी भाषा में निहित हैं। भारत को अपनी माता मानने वाले प्रत्येक व्यक्ति को संस्कृत का अध्ययन करना चाहिए। केवल संस्कृत से ही हम भारत को समझ सकते हैं। (श्री गुरुजी समग्र खंड -1)

हिब्रू भाषा ने पुनर्स्थापित किया इजरायल-

इजरायल के विषय में यह जानना आवश्यक है कि इजरायल को पुनः राष्ट्र के रूप में स्थापित करने का काम वहां की हिब्रू भाषा ने किया है। यहूदी लगभग 2000 वर्ष तक विश्व के अनेक देशों में भटकते रहे। हिब्रू भाषा भी मृतप्राय हो गई थी। केवल धार्मिक ग्रन्थों की भाषा मात्र थी। परंतु हिब्रू भाषा पुनर्जीवित करने का संकल्प यहूदी समाज के मन में था और वे उस संकल्प को लेकर आगे बढ़े। हिब्रू भाषा को पुनर्जीवित किया। उसके पश्चात हिब्रू भाषा ही यहूदी राष्ट्र को पुनः स्थापित करने का माध्यम बनी। आज इजरायल विश्व का एक शक्तिशाली और समर्थ राष्ट्र के रूप में खड़ा है। भाषा किसी भी राष्ट्र को उसकी चित्ति से जोड़ती है। भाषा ही उस राष्ट्र की सांस्कृतिक पहचान कराती है। राष्ट्रीय भाषा में लिखित साहित्य में वहां का इतिहास और संस्कृति निहित होती है।

विश्व को एक सूत्र में पिरोती है संस्कृत भाषा-

राजभाषा पर केंद्रीय कक्ष में जब विविध समूहों में चर्चा हो रही थी, तब लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ कि चर्चा के समय डॉ. आंबेडकर और लक्ष्मीकांत मैत्र शुद्ध संस्कृत भाषा में चर्चा कर रहे थे। डॉ. आंबेडकर की इच्छा थी कि संस्कृत को राष्ट्र भाषा बनाने का प्रस्ताव पारित किया जाना चाहिए, परंतु बी.पी. मौर्य जैसे तरुण सदस्यों के विरोध के कारण यह संभव नहीं हो सका। बी.पी. मौर्य ने बाद में इस बात का खेद प्रकट किया कि उन्होंने अकारण ही डॉ. आंबेडकर के संस्कृत को राष्ट्र भाषा बनाने विरोध किया।

भारत के विषय में यदि हम विचार करें तो हम भारत की सांस्कृतिक विरासत और इतिहास जिस भाषा में पाते हैं वह संस्कृत भाषा है। संस्कृत भाषा का साहित्य विश्व का सबसे प्राचीन और समृद्ध साहित्य है। यह न केवल भारत को एक सूत्र में पिरोता है, अपितु सम्पूर्ण विश्व को मानवता की शिक्षा देता है। संस्कृत साहित्य ही भारतीय संस्कृति का आधार है। भारतीय संस्कृति हमें तेरे और मेरे के भाव से मुक्त कर विश्व को एक परिवार के रूप में मानती है।

अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम।
उदार चरितानाम तु वसुधैव कुटुम्बकम।।

इस उदार भाव को समाज में स्थापित करने का कार्य संस्कृत साहित्य के माध्यम से हो सकता है। सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप स्थापित करने का कार्य यदि कोई भाषा कर सकती है तो वह संस्कृत भाषा है। संस्कृत कवियों ने भारतीय एकात्मता को अपने ग्रंथों में दर्शाया है। नोबल पुरस्कार विजेता अमत्र्य सेन कहते हैं, 'संस्कृत के साहित्य ने भारत की संस्कृति और भारत की लोक परम्पराओं को संजोने का काम किया है। जो आज भी भारत के समाज में रची बसी हैं। कालिदास ने मेघदूत में काल्पनिक मेघ रूपी दूत के माध्यम से विविधतापूर्ण भारतीय रीति-रिवाजों और नैसर्गिक सौंदर्य का अद्भुत वर्णन किया है।' (भारतीय

संस्कृति और अर्थतंत्र)। यह केवल एक उदाहरण है। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति और परम्पराओं का वाहक है।

ज्ञान-विज्ञान और अध्यात्मिक चेतना-

संस्कृत न केवल भारतीय ज्ञान-विज्ञान की भाषा है, अपितु भारत की आत्मा संस्कृत ग्रंथों में सन्निहित है। भारत की चित्ति को समझने के लिए भारतीय साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। वेद, उपनिषद, आरण्यक, पुराण, धर्मग्रंथ, रामायण, महाभारत, नाट्यशास्त्र, दर्शनशास्त्र योग-सूत्र, कामसूत्र, अष्टाध्यायी आदि भारतीय ज्ञान मीमांशा के अनुपम ग्रंथ हैं।

भारत की सांस्कृतिक धरोहर आज से नहीं, हजारों वर्षों से अटूट चली आ रही है। जैसे देवतात्मा हिमालय से गंगा निकलती है और निरंतर बहती चली जाती है, उसी प्रकार हिमालय से ही हमारे सांस्कृतिक दार्शनिक और आध्यात्मिक स्त्रोत उभरते हैं। महाकवि कालिदास ने हिमालय का

> गीता किसी धर्म विशेष, किसी वर्ण विशेष, किसी देश विशेष का शास्त्र नहीं है। गीता का उपदेश समस्त मानव जाति के लिए है। यही कारण है कि गीता का प्रभाव केवल हिन्दू जाति पर ही नहीं, सभी धर्मों के अनुयायियों पर है।

वर्णन कुमार संभव के प्रथम श्लोक में ही किया है।

अस्ति उत्तरस्यां दिशि देवतात्मा,
हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वपरौ तोयनिधि वगा'ः,
स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।।

भारत के उत्तर दिशा में देवताओं के राजा हिमालय को हम ज्ञान की आभा का केंद्रबिंदु मानते हैं। वेदों को हम हिमालय माने तो उपनिषद उसकी चोटियां हैं, जो हमेशा ज्ञान के सूर्य से प्रकाशमान रहती हैं। सारे विश्व के दर्शनों में उपनिषद हमारी विचारधारा की चरम सीमा हैं। उपनिषदों से ही अन्य शास्त्रों की निष्पत्ति हुई। उपनिषदों में जो सत्य है, उन्हीं की भिन्न-भिन्न प्रकार से अभिव्यक्ति सर्वत्र की गई है। विश्व में जिस ग्रंथ 'गीता' की सर्वाधिक स्वीकार्यता है, उसमें उपनिषदों का ही सार है। भगवान कृष्ण ने स्वयं कहा है-

सर्वोपनिषद गावो दोग्धा गोपाल नंदनः।
पार्थो वत्स सुधी भोक्ता, दुग्धं गीतामृतं महत।।

उपनिषदों के विषय में यह कहना उचित होगा कि उपनिषद वेदरूपी हिमालय की पर्वत श्रृंखलायें हैं, जो हमेशा ज्ञान के सूर्य से प्रकाशमान रहती हैं।

हमारे आध्यत्मिक जीवन और दार्शनिक साहित्य में भगवद्गीता एक विशेष स्थान रखती है। हजारों वर्षों से भगवद्गीता करोड़ों व्यक्तियों को प्रोत्साहित करती चली आ रही है। भगवद्गीता मात्र सात सौ श्लोकों का ग्रंथ मात्र नहीं है, अपितु यह सम्पूर्ण मानवजाति का कल्याणक ग्रंथ है।

आदि शंकराचार्य ने एक स्थान पर लिखा है।

भगवद्गीता किंचित अधीता गंगाजल लवकनिका पीता।
सकृदपि येन मुरारी समर्चा क्रियते तस्य यमेन न चर्चा।।

भगवद्गीता का थोड़ा सा भी ज्ञान पाया हो, गंगाजल थोड़ा सा भी पिया हो और श्री कृष्ण को थोड़ा सा भी स्मरण किया हो, तो यम से कोई भय नहीं रहता।

आदि शंकराचार्य से लेकर आज तक जितने भी बड़े-बड़े दार्शनिक और विचारक रहे हैं, सभी ने भगवद्गीता को आधार माना है। सभी की गीता के भाष्य करने में अपनी भूमिका रही है। शंकराचार्य, मध्वाचार्य, बल्लभाचार्य, रामानुजाचार्य आदि बड़े आचार्यों ने गीता पर भाष्य लिखे। हमारे राष्ट्रीय आंदोलन के जो नेता थे, वे सभी गीता से प्रभावित रहे। लोकमान्य तिलक ने गीता पर गीता-रहस्य नाम से महान ग्रंथ की रचना की। महात्मा गांधी गीता को हमेशा अपने साथ में ही रखते थे।

गीता किसी धर्म विशेष, किसी वर्ण विशेष, किसी देश विशेष का शास्त्र नहीं है। गीता का उपदेश समस्त मानव जाति के लिए है। यही कारण है कि गीता का प्रभाव केवल हिन्दू जाति पर ही नहीं, सभी धर्मों के अनुयायियों पर है। भगवान कृष्ण कहते हैं कि जो जिस प्रकार से मेरे पास आएगा, मैं उसकी श्रद्धा को मजबूत करूँगा।

ये यथा माम्-प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजामि अहम।
मम वर्तमानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।
यो यो यां यां तनु भक्तः श्रद्धया अर्चितुमिच्छन्ति।
तस्य तस्याचला श्रद्धा तामेव विदध्यामि अहम।।

किसी भी कार्य के प्रति श्रद्धा आवश्यक है। श्रद्धा के बिना किसी कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती। मैं उस श्रद्धा को दृढ़ करता हूँ।

गीता का दूसरा पक्ष है, गीता हमारे सामने सम्पूर्ण योगशास्त्र रखती है। हमारी पद्धति में चार प्रकार के योग माने गए हैं-

1. ज्ञानयोग 2. कर्मयोग 3. भक्तियोग तथा 4. राजयोग।

योग को आत्मा और परमात्मा के मिलन का साधन माना जाता है।

गीता में इन चारों योगों का मिश्रण है। आज के मानव के लिए ये चारों योग आवश्यक हैं। ये चारों योग मनुष्य को व्यष्टि से समष्टि की ओर ले जाते हैं, व्यक्ति मैं से हम की ओर आ जाता है। ये सम्पूर्ण जगत एक ही तत्व से अनुश्रित है। एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति। एक ही सत्य है विद्वान लोग भिन्न भिन्न प्रकार से बोलते हैं। इस सत्य की प्रतीति यदि कहीं होती है तो वह उपनिषद हैं। वास्तव में उपनिषदों को हमारी शिक्षा व्यवस्था का अंग होना चाहिए। यह कोई धर्म की बात नही है, किसी विशेष धर्म का प्रचार करना नहीं है। यह धमार्तीत है, सर्वव्यापी है। ये आध्यात्मिक और नैतिक मूल्य जबतक हम इस देश में स्थापित नहीं करेंगे तब तक भारत विश्व गुरु के स्थान पर पुनर्स्थापित नही हो सकता।

जब हम उपनिषदों की विचारधारा को अपने जीवन में अपनाएंगे

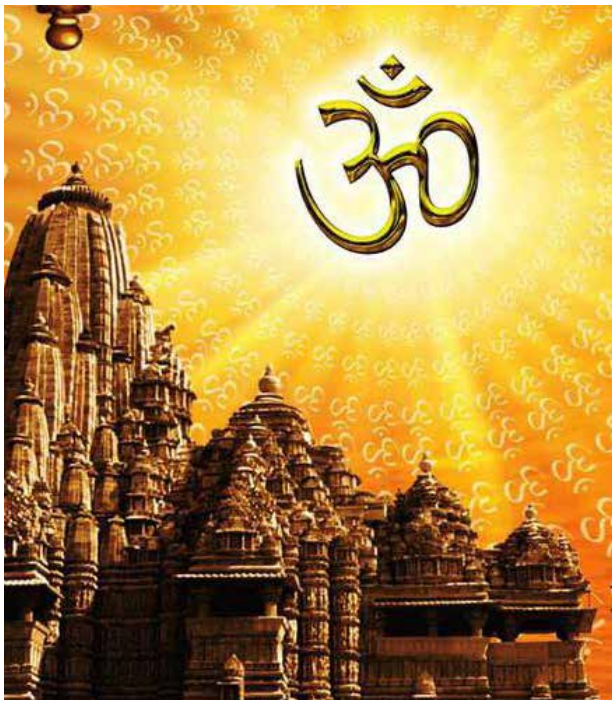

और कर्म करेंगें, तब हम अपनी खोई हुई विरासत को पुनः पा सकेंगे। दुनिया के अनेक देशों के उदाहरण हमारे सामने हैं। जापान पिछले विश्व युद्ध में पूरी तरह बर्बाद हो गया था। जर्मनी में, बर्लिन में युद्ध के अंत में एक भी घर नहीं बचा था। पूरा शहर समाप्त हो गया था। लेकिन आज जापान और जर्मनी के लोगों ने कर्मयोग को जीवन में अपनाकर अपने देश को पुनर्स्थापित किया है। अपने देश के प्रति स्वाभिमान जागृत करना पहली प्राथमिकता होती है। यह स्वभिमान अपनी भाषा संस्कृति और गौरवपूर्ण इतिहास से निर्माण होता है। जैसा कि आरम्भ में मैंने इजरायल का उदाहरण दिया है। जो इजरायल अपनी भाषा, संस्कृति सब कुछ खो चुका था। हजारों वर्षों तक यहूदी समाज दुनियाभर में भटकता रहा, एक दिन उसने अपनी भाषा हिब्रू को हथियार बनाकर इजरायल को पुनः स्थापित किया। यह होती है स्वभाषा की शक्ति। आज विश्व के सभी शक्ति सम्पन्न देश अपनी भाषा के माध्यम से ही सिरमौर बने हैं। अपनी भाषा को खोने से केवल भाषा ही समाप्त नहीं होती, अपितु वहाँ की संस्कृति समाप्त हो जाती है। संस्कृति विहीन राष्ट्र प्राणहीन हो जाता है। राष्ट्र की रक्षा केवल सेना या संविधान मात्र से नहीं हो सकती। उसकी भाषा और संस्कृति की रक्षा के बिना सेना और संविधान भी राष्ट्र रक्षा नहीं कर सकते।

आइये संस्कृत भाषा के विषय मे थोड़ी चर्चा कर ली जाए। विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक भाषा यदि कोई है तो वह संस्कृत भाषा ही है। इसमें लिखित विपुल साहित्य सदियों से विश्व को मार्गदर्शन दे रहा है। विश्वभर के लोग संस्कृत भाषा पढ़ने भारत आते थे। इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे सामने हैं।

कैसे हुए हम संस्कृत भाषा से विमुख-

संस्कृत भाषा की शक्ति से भयभीत होकर ही मैकाले ने इस भाषा को समाज से दूर करने का कुत्सित षड्यंत्र रचा और भारतीय समाज उस कुचक्र में फंस गया। आज धीरे धीरे हमारी पीढ़ी राष्ट्र प्रेम से विमुख निर्माण हो रही है। आज देश में जिस प्रकार का वातावरण दिखाई दे रहा है, उसका मूल कारण हमारा अपनी भाषा से दूर होना है। इस ओर अगर हमारा ध्यान नहीं गया तो स्थिति और भी भयावह हो सकती है। क्योंकि प्रत्येक भाषा

संस्कृत भाषा की शक्ति से भयभीत होकर ही मैकाले ने इस भाषा को समाज से दूर करने का कुत्सित षड्यंत्र रचा और भारतीय समाज उस कुचक्र में फंस गया। आज धीरे धीरे हमारी पीढ़ी राष्ट्र प्रेम से विमुख निर्माण हो रही है। आज देश में जिस प्रकार का वातावरण दिखाई दे रहा है, उसका मूल कारण हमारा अपनी भाषा से दूर होना है। इस ओर अगर हमारा ध्यान नहीं गया तो स्थिति और भी भयावह हो सकती है।

का अपना संस्कार होता है। भाषा में उस देश की मिट्टी की खुशबू होती है। वह जहाँ-जहाँ फैलती है, समाज के मन-मस्तिष्क को अपनी महक से आप्लावित कर लेती है और समाज अपने देश की मिट्टी की खुशबू को भूल जाता है। उसे अपने देश की मिट्टी से बदबू आने लगती है। हमारे देश में आज यह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। वैश्वीकरण की दुहाई देकर भले ही हम इससे मुँह मोड़ लें परंतु यह स्थिति समाज को देश मिट्टी, देश की परंपराओं एवं देश के मानबिन्दुओं से दूर ले जा रही है।

ईसाई धर्म प्रचारक इस बात को शीघ्र ही समझ गए थे कि जब तक भारत में संस्कृत भाषा का प्रभाव रहेगा तब तक इस देश में ईसाई धर्म का काम नहीं किया जा सकता। एबी डुबोया ने 1815 में धर्म प्रचार सम्बन्धी अपना अनुभव लिखा है। उससे ज्ञात होता है कि ईसाई धर्म

के प्रचार में सबसे बड़ी बाधा संस्कृत भाषा और उसमें लिखा हुआ साहित्य है। वह लिखता है, 'पिछले 30 वर्षों में हमने केवल 300 लोगों का ही धर्म परिवर्तन कराया है। यहां की शिक्षा व्यवस्था संस्कृत भाषा (अपनी मूल भाषा) में होने के कारण लोगों में अपने धर्म और परम्पराओं के प्रति दृढ़ आस्था है। जबतक पाश्चात्य भाषा में शिक्षा का प्रचार नहीं होगा, हिंदुओं का धर्म परिवर्तन करना कठिन है।'

इसी को ध्यान में रखकर मैकाले ने कहा था कि थोड़ी सी अंग्रेजी शिक्षा से ही बंगाल में कोई मूर्ति पूजक नहीं रह जायेगा। ईसाई पादरी मैकाले की इस आशा से पूर्ण रूप से सहमत थे। 1835 में डॉक्टर डफ ने घोषणा की थी कि जिस-जिस दिशा में अंग्रेजी शिक्षा प्रगति करेगी, उस-उस दिशा में हिंदुत्व के अंग टूटते जाएंगे और धीरे धीरे हिंदुत्व का कोई भी अंग साबित नहीं रहेगा।

यह उदाहरण भाषा की शक्ति को बताने के लिए मैंने दिया है। अपनी भाषा का त्याग करने के कारण हमने क्या खोया और क्या क्या खोते जा रहे हैं, इस विषय में थोड़ी चर्चा करते हैं।

भाषा की उपेक्षा के कारण खोई हमने विश्वगुरुता-

भारत विश्व का सबसे प्राचीन राष्ट्र होने के कारण ज्ञान विज्ञान का आदि राष्ट्र है। शिक्षा के प्राचीनतम व विशालतम विश्वविद्यालय जैसे नालन्दा, तक्षशिला ,विक्रमशिला भारत में थे। सम्पूर्ण विश्व के लिए शिक्षा के केंद्र रहे। विश्वभर से ज्ञान पिपासु यहां आकर अपनी ज्ञान क्षुधा को शांत करते रहे। आज विश्व में विविध प्रकार के ज्ञान विज्ञान की जो चमक दिखाई देती है उसके बीज भारत से ही दुनियाभर में गये। इसीलिए भारत को विश्व का गुरु कहा जाता था।

एक से नौ तक के अंक, शून्य और दशमलव की पद्धति इन सबका

आविष्कार भारत में ही हुआ और यहीं से ये अरब होते हुए यूरोप और फिर सारी दुनिया में फैला। दशमलव पद्धति का ज्ञान आर्यभट्ट और ब्रह्मगुप्तके समय भारत में बहुत प्रचलित था। बौद्ध धर्म प्रचारकों के द्वारा यह ज्ञान चीन पहुँचा और बगदाद में इसका प्रचार 850 ई० के लगभग पहुँचा।

बीजगणित का विकास भारत में हुआ जो यहां से यूनान पहुंचा और अरब से होते हुए यूरोप पहुँचा। अंग्रेजी में इस विद्या को अलजबरा कहा जाता है, जो अरबी शब्द अल जब्र है। ज्योतिष और गणित के प्राचीन आचार्यों में आर्यभट्ट का स्थान भारत में ही नहीं अपितु सारे विश्व में सबसे ऊंचा है। आर्यभट्ट ने ही विश्व को सबसे पहले संसार को यह ज्ञान दिया कि सूर्य स्थिर है और पृथिवी उसके चारों ओर घूमती है, जिससे दिन और रात होते हैं। उन्होंने ही ग्रहण की भविष्यवाणी करने की विधि निकाली। आर्यभट्ट के बाद दूसरे आचार्य ब्रह्मगुप्त हुए जिन्होंने भारत की ज्योतिष विद्या को संगठित रूप दिया।

चिकित्सा क्षेत्र में भारत सम्पूर्ण विश्व का गुरु है। सुश्रुत ,चरक, वाग्भट्ट और भावमिश्र ये चार प्रधान आचार्य हैं, जिन्होंने शरीर विज्ञान और औषधि विज्ञान का विकास किया। शल्य चिकित्सा के लिए यहां सवा नौ सौ औजार प्रचलित थे। गैरिसन का कहना है कि प्राचीन भारत में ऐसा कोई भी बड़ा ऑपरेशन नही था जो भारतीय चिकित्सक सफलतापूर्वक नहीं कर सकते हों।

ये सभी ज्ञान के भण्डार भारतीय भाषा (संस्कृतभाषा) में ही प्राप्त हैं। भारत को जानने के लिए संस्कृत भाषा का ज्ञान आवश्यक है। संस्कृत भाषा को हमसे दूर कर हमें हमारे ज्ञान से वंचित के दिया गया। यूरोपीय भाषा में यूरोपीय ज्ञान का परोसा गया। इससे आत्म विस्मृत समाज निर्माण होने लगा। उसका एक और दुष्परिणाम हुआ। हम अपनी जड़ों से कट रहे हैं। कोई भी समाज अपनी जड़ों से कटकर जीवित नही रह सकता। अपने मूल से कटा हुआ समाज प्राणहीन होता है। जिसमें अपनी भाषा तथा देश के प्रति स्वाभिमान नहीं होता, वह समाज मृत होता है

जिस प्रकार इजरायल ने अपनी भाषा हिब्रू का पुनरुद्धार कर अपने देश को आत्मसम्मान के साथ पुनर्स्थापित किया, आज वह विश्व की एक महाशक्ति के रूप में खड़ा है। आज संस्कृत भाषा जिस स्थिति में है, उसकी तुलना में हिब्रू भाषा मृत थी। हिब्रू भाषा की तो कोई शब्दावली भी उपलब्ध नहीं थी। फिर भी, हिब्रू भाषा को मृतप्राय भाषा से पुनर्जीवित कर उसे साहित्यिक और आम बोलचाल, व्यापार, चिकित्सा आदि व्यवहार की भाषा के रूप स्थापित कर दिया गया। इजरायल में यह सब स्पष्ट सोच का परिणाम था कि उन्होंने अपनी भाषा हिब्रू में तकनीकी शब्दावली विकसित की। आज इजरायल स्वाभिमानी राष्ट्र के रूप में खड़ा है। क्या भारत में यह नहीं हो सकता? कब तक हम विदेशी भाषा को अपने जीवन का अंग मानते रहेंगे? कब हम स्वाभिमान के साथ अपनी भाषा अपनाएंगे? इन प्रश्नों के उत्तर खोजा जाना अभी शेष है।

जयतु भारतं

*सह समन्वयक पंचनद शोध संस्थान दिल्ली प्रान्त
*प्रसार भारती में आकाशवाणी लोकसम्पदा संरक्षण महापरियोजना में परियोजना प्रमुख
*संयुक्त महामंत्री एवं ट्रस्टी भारतीय धरोहर
*स्वतंत्र निदेशक , सी एम पी डी आई कोल इंडिया भारत सरकार

नवभारत में अर्थ अर्जन : शुचिता व उद्यमिता की आवश्यकता

प्रो. विजय कुमार कौल

सदियों से भारतीय मनीषियों व विद्वानों ने अर्थ के महत्व को समझते हुये इसे जीवनयापन व मनुष्य की सभी इच्छाओं की पूर्ति के लिये आवश्यक माना है। इस कार्य में शुचिता को भी उतना ही स्थान दिया गया है। भारतीय संस्कृति में जीवन के चार लक्ष्यों-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में अर्थ को दूसरा स्थान दिया गया है। अर्थ को व्यक्ति की सभी इच्छाओं की पूर्ति व धर्म कार्यों के लिये आवश्यक माना गया है। आज की परिस्थिति में इसका पुनरावलोकन करने की आवश्यकता है। एक ओर जहां सरकार भ्रष्टाचार पर नियंत्रण करने के उपाय कर रही है, ई-गवर्नेंस को बढ़ाकर पारदर्शिता लाने का प्रयास कर रही है, 'भारतीय दीवाला व शोधन अक्षमता कोड' जैसे कानून बनाकर क्रोनी कैपीटलिजम पर लगाम लगा रही है, वहीं दूसरी ओर भारतीय अर्थव्यवस्था सुस्ती की दिशा में जा रही है। कुछ लोग इस स्थिति के लिये भारत सरकार द्वारा भ्रष्टाचार व पारदर्शिता के लिये उठाये गये कदमों को दोषी मान रहे हैं। वास्तव में भारतीय अर्थव्यवस्था की समृद्धि व विकास के लिये अर्थ अर्जन में शुचिता के साथ-साथ उद्यमिता को भी प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है। दोनों में कोई विरोधाभास नहीं है। भारत हमेशा से उद्यम प्रधान देश रहा है। इसकी समृद्धि का कारण उद्यमिता का होना है।

आज भारत बदल रहा है। स्वतंत्रता के बाद देश ने कई उतार-चढ़ाव देखे। पिछले कुछ वर्षों में विश्व की अर्थव्यवस्था में वैश्वीकरण, चीन का विश्व राजनीति में बढ़ता प्रभाव, विश्व में सामाजिक व राजनीतिक उथल-पुथल, भौतिकतावाद व पर्यावरण की बढ़ती समस्याएं, विज्ञान व तकनीकी विकास में हो रही तीव्र प्रगति, इंडस्ट्री-4.0 का आगमन, कोरोना वायरस जैसी बीमारियों का बढ़ना, जैसे परिवर्तन हो रहे हैं। यह सभी परिवर्तन व्यक्ति के जीवनयापन, अर्थ उपार्जन के बदलते साधन, रोजगार की उपलब्धियां, साक्षरता से बढ़ती आकांक्षाओं की पूर्ति, अच्छे जीवन की तलाश आदि को प्रभावित कर रहे हैं। जीवनयापन के लिये अर्थ आवश्यक है। अर्थ की अनुपलब्धि या अधिक अर्थ की लालसा व लोभ आर्थिक अपराधों को बढ़ावा दे रही है। विश्व अर्थव्यवस्था में डिजिटल तकनीकी के बढ़ते प्रयोग के साथ आर्थिक अपराध साईबर क्राइम के रूप में बढ़ रहे हैं।

इस लेख में इन सब विषयों पर चर्चा की गयी है। जीवन में अर्थ का क्या महत्व है। अर्थ उपार्जन में शुचिता व उद्यमिता का क्या योगदान है, भारतीय शास्त्रों में इस विषय पर क्या है। अर्थ उपार्जन के साधनों में पुरातनकाल से आजतक क्या परिवर्तन हुए हैं। आज की परिस्थिति में अर्थ अर्जन में शुचिता व उद्यमिता का महत्व और आर्थिक अपराधों का बदलता स्वरूप क्या है। इन सभी प्रश्नों का उत्तर इस लेख में देने का प्रयास किया गया है।

जीवन में अर्थ का महत्व

अर्थ का शाब्दिक अर्थ वस्तु या पदार्थ है। इसमें वे सभी भौतिक वस्तुएं आती हैं, जिन्हें जीवनयापन के लिये मनुष्य अपने अधिकार क्षेत्र में रखना चाहता है। अर्थ से उदर की पूर्ति होती है। कर्तव्य निर्वाह में अर्थ की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अर्थ में केवल धन या मुद्रा ही नहीं, बल्कि वे सभी वस्तुएं शामिल हैं, जिनसे मौलिक सुखों की पुष्टि होती है। भारत में कभी भी अर्थ को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा गया है। चाणक्यसूत्र में लिखा है-

सुखस्य मूल धर्मः धर्मस्य मूलमर्थः।

भारतीय समाज में अर्थ व काम का संतुलित प्रयास या प्रभाव रहा है। आर्थिक संपन्नता ही धर्म अथवा प्रेम, परोपकार, त्याग व बलिदान आदि का निर्वाह संभव करती है। राज्य भी मनुष्यों व प्रजा को सुखी रखने व उनकी रक्षा करने के लिये अर्थ पर निर्भर करता है। गृहस्थ आश्रम में मनुष्य का लक्ष्य धन उपार्जन करना है, ताकि काम व इच्छाओं की पूर्ति व संतुष्टि हो सके। धर्म जहां समाज को धारण करता है, वहीं अर्थ व काम समाज में प्रवाह बनाये रखते हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था की समृद्धि व विकास के लिये अर्थ अर्जन में शुचिता के साथ-साथ उद्यमिता को भी प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है। दोनों में कोई विरोधाभास नहीं है। भारत हमेशा से उद्यम प्रधान देश रहा है। इसकी समृद्धि का कारण उद्यमिता का होना है।

वेदों में विश्व के प्रति सकारात्मक सोच रही है। सभी अच्छी व उत्तम वस्तुओं की सराहना की गयी है। यज्ञ का उद्देश्य शक्ति की प्राप्ति, ज्ञान, प्रसन्नता, दीर्घायु व अध्यात्म की प्राति है। धर्म का अर्थ व काम के साथ कोई विरोधाभास नहीं है। ऋग्वेद में कहा गया है.....

परिचिन्मत्रो द्रविण ममन्याद्भृतस्याम पक्षा नमसा विवासेत।

उतस्वेन। कुतुर्ना संवदेन श्रोयांस दक्ष मनसा जगृभ्यात (ऋ.10.31.2)

सभी मनुष्य धन संपदा पर चिंतन करें। इसकी प्राप्ति के लिये विनम्रतापूर्वक, विवेक द्वारा सही व उत्तम मार्ग चुनकर समृद्धि व श्री को प्राप्त करें। यहां धन संपत्ति की प्राप्ति के साथ-साथ धर्मपूर्वक कार्यों (मोरल लॉज) द्वारा, सत्य मार्गपर चलते हुये 'श्री' प्राप्त करने की बात कही गयी है। इसे विनम्रता व विवेक द्वारा किया जाना चाहिये। क्योंकि यह सब ईश्वर व समाज के सहयोग से प्राप्त होता है।

ऋग्वेद में दिये गये 'श्रीसूक्त' में भी श्री व लक्ष्मी की कामना व्यक्त की गयी है, जैसे दरिद्रता के नाश की, सौभाग्य व कीर्ति और यश की कामना की गई है। यहां कीर्ति स्वयं व समाज दोनों के लिये मांगी गयी है। लक्ष्मी सिर्फ धनधान्य की स्वामिनी नहीं, बल्कि सैन्य संपत्ति की भी स्वामिनी हैं और कामना की गयी है अश्व, गज, रक्ष और सुसज्जित सेना की। श्री द्योतक हैं, जीवन में उठने वाली आकांक्षाओं की, जो जीवन में सुन्दर व देदीप्यमान वस्तुओं, खुश हालात व वांछनीय संपत्तियों से संबंधित हैं। श्री सूक्त में देवी का संबंध पृथ्वी, खाद्यान्न की प्रचुरता, पशुधन, संपत्ति, सोना व देव से है। इसी प्रार्थना में छः विपदाओं व बुराईयों- भूख, प्यास, शोक, मोह, बुढ़ापा व मृत्यु से बचाने की विनती भी की गयी है।

अर्थ उपार्जन में शुचिता व उद्यमिता

सांसारिक व्यवस्था त्रिगुणात्मक है, यानि सात्विक, राजसिक व तामसिक। विश्व में हर प्रकार की वस्तुएं व कार्य इन तीनों वर्गों में विभाजित होते हैं। मनुष्य को भी तीन प्रवृत्ति में विभाजित किया जाता है। तामसिक प्रवृत्ति के लोग अधिक होते हैं, जो स्वभाव से मूलतः स्वार्थी व लोभी होते हैं। अपने स्वार्थ व लोभ के लिये वे दूसरे की हानि करने व बल प्रयोग करने आदि से चूकते नहीं हैं। इस प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुये समाज में नियम व कानून व प्रशासन की व्यवस्था की गई है। अर्थ अर्जन में शुचिता भी इसी का अंग है।

अर्थ में केवल धन या मुद्रा ही नहीं, बल्कि वे सभी वस्तुएं शामिल हैं, जिनसे मौलिक सुखों की पुष्टि होती है। भारत में कभी भी अर्थ को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा गया है। चाणक्यसूत्र में लिखा है-
सुखस्य मूल धर्मः धर्मस्य मूलमर्थः।

मनु ने कहा है

न लोकावृत्तं वतेर्ते वृति हेतोः कथन्चन। (मनु.4अ, श्लोक पूर्वाद)

जीविका के लिये समाज विरुद्ध कार्यों का कमी भी आश्रय ग्रहण न करें। अच्छे नियमों का पालन करते हुये लोग दूसरों के अर्थ को भूलकर भी अपरहण न करें। आर्थिक योजनाओं को क्रियान्वित करने में उसमें कार्य करने वालों को किसी प्रकार का भय न हो और वे कर्तव्यनिष्ठ एवं निश्चितं होकर अपने लाभ, समाज के हित और राष्ट्र के कल्याण एवं अभ्युदय के लिये अधिक से अधिक कार्य करेंगे।

मनु ने मानवीय सिद्धांतों पर अर्थ संग्रह करने की व्यवस्था बनायी। निंदनीय व समाज विरोधी कार्यों से अर्थ उपार्जन करना अत्याधिक बुरा एवं शोषणयुक्त माना है। बुरे मार्गों से अर्थ उपार्जन करने में व्यक्ति अपने शरीर को अधिक कष्ट देता है और समाज के भय से परेशान रहता है एवं उपार्जित अर्थ का सुखपूर्वक उपयोग भी नहीं कर सकता है। जीवन में मनु ने उद्योग-उद्यमिता-परिश्रम के द्वारा जीवन निर्वाह करने वाली वृत्ति को ही समाज में मान्यता देकर सम्मानित स्थान दिया है। उद्योगी व्यक्ति अपने उद्योग के बल पर ही उन्नति करता हुआ समाज में सम्मान पाता है और दूसरों को सही मार्ग दिखाता है।

शुक्राचार्य ने भी कहा है कि मनुष्य अर्थ का दास है और अर्थ किसी का भी दास नहीं है, दान, अर्थ चाहने वाले व्यक्ति को सर्वदा यह करना चाहिये।

अर्थस्यपुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्
अतोर्क्षाय यते तैव सर्वदा यत्न मास्थितः (शु. 4-283)

चाणक्य के शिष्य कामन्दकी ने लिखा है कि भले मार्ग द्वारा अर्थात दूसरों का शोषण और अपहरण किये बिना अर्थ को कमाना वास्तविक अर्थ प्राप्त करना कहा जाता है। अर्थ प्राप्ति में दो प्रकार की विचारधाराएं- भौतिकवादी और आध्यात्मवादी मानी गई हैं। भौतिकवादी विचारों से प्राप्त होने वाला अर्थ शारीरिक सुख तो दे सकता है, किंतु आध्यामित्क सुख नहीं दे सकता।

कामन्दकी ने पुनः लिखा है कि अर्थ की प्राप्ति बुद्धि के प्रयोग और उद्योग के बल पर ही होती है। बिना दोनों का उपयोग किये अर्थ का प्राप्त होना अत्यंत कठिन है। जैसे

घातोश्चामीकरमिव सर्पिनिमर्थनादिव।
बुद्धि प्रयत्नोपगताध्यवसायाद् ध्रवं फलम्।

जिस प्राकर सुर्वण अनेक धातुओं में मिला हुआ होने पर भी आग में तपने पर प्रकट हो जाता है अथवा दही मथने पर घी के रूप में प्रकट होता है, उसी प्रकार निरन्तर कार्यरत व्यक्ति बुद्धि और उद्योग के बल पर

निश्चय ही अर्थ रूपी फल पाता है। पुनः कामन्दकी लिखते हैं कि उद्योग व व्यापार से अर्थ की वृद्धि होती है।

नलिनी वाम्बुसम्पत्या बुद्धया श्रीः परिपाल्येत।
उत्थान व्यवसायम्यां विस्तार मुपनीयते। (कामन्दकी 13-5)

जिस प्रकार जल की संपत्ति से नलिनी का परिपालन होता है, उसी प्रकार बुद्धि रूपी जल से लक्ष्मी का परिपालन होता है। उद्योग व व्यापार से अर्थ की वृद्धि व विस्तार होता है। उत्साह और बुद्धि को अर्थ की प्राप्ति एवं अर्थ को विस्तार में परमसाधन माना गया है। दोनों गुणों के अभाव में अर्थ प्राप्त होने पर भी व्यक्ति उसकी रक्षा और वृद्धि नहीं कर सकता है। इसी तरह आलसी, व्यसनी व्यक्ति भी अर्थ की रक्षा नहीं कर सकते।

आचार्य कामन्दकी ने व्यापार को प्रमुख व महत्वपूर्ण स्थान दिया है। व्यवसाय में लगा अर्थ नित्य प्रति वृद्धि को ही प्राप्त होता है।

उत्थाने नैद्योत्सर्व भिन्धनेनैद पावकम।
श्रियं हि सततोत्थायी दुर्बलोदपि समुश्नते।।

उद्योग के माध्यम से ही अर्थ की वृद्धि करे, जिस प्रकार आग में लकड़ियों को डालने से अधिक प्रज्जवलित होती है, उसी प्रकार उद्योग से ही अर्थ की अभिवृद्धि होती है। दुर्बल व्यक्ति भी निरंतर उद्योगी होने पर लक्ष्मी, अर्थ को प्राप्त कर लेता है।

अर्थ अर्जन के बढ़ते व बदलते साधन

मनुष्य मननशील प्राणी होते हुये जीवों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। मनुष्य ने आदि काल से ही अपने चिंतनयुक्त स्वभाव से जीवन को सुखमय बनाने के लिये मनन किया। अपने उद्योग के बल पर उसने बड़े-बड़े कार्य किये और जीवन यापन का मार्ग खोजा। अपने जीने के लिये नितांत आवश्यक सामग्रियों को निकाला। कृषि की खोज, पशुपालन, वस्तु विनिमय, खनिज का उत्सर्जन व उद्योग चिकित्सा, विज्ञान मुद्रा का चलन आदि कार्य, मनुष्य के चिंतन व उद्योग का परिणाम है। जैसे-जैसे मनुष्य ने सामाजिक व आर्थिक विकास किया, अपनी समृद्धि के लिये कई प्रकार के कार्य विकसित किये। चाणक्य ने बहुअंगीय कारकों को क्रियाओं के स्वरूप व उनके एक दूसरे से संबंध को समझते हुये इनके सुचारु रूप से चलते

हुये राज्य की समृद्धि का प्रयास किया। कृषि की प्रधानता के साथ कुटीर व ग्रामीण आधारित अर्थव्यवस्था पुरातनकाल की प्रमुखता थी।

सरस्वती सिन्धु घाटी सभ्यता बहुत ही उन्नतशील व समृद्ध थी। इसकी अर्थव्यवस्था का आधार ग्राम आधारित अर्थव्यवस्था थी। प्रचुर मात्रा में अन्न व खाद्यान्न को उत्पन्न कर गांव के अतिरेक (सरप्लस) से शहरों को पोषित करने का काम होता था। आर्थिक क्रियाओं का वर्गीकरण व मनुष्यों व राज्य का कार्यक्षेत्र निश्चित था। गांवों में अर्थव्यवस्था अनुसार कार्य का वर्गीकरण होता था। यह प्रथा आज की जाति व्यवस्था से भिन्न व्यक्ति की वृत्ति योग्यता, ज्ञान व दक्षता के अनुसार थी। ग्राम केंद्रित अर्थव्यवस्था संभावित व संतुलित अर्थव्यवस्था थी। इस समय प्रमुख आर्थिक कार्य कृषि, पशुपालन, व्यापार व वाणिज्य और शिल्प व कर्मकार थे। पुरातनकाल से ही यह माना गया है कि सभ्यता के विकास का प्रथम आधार ज्ञान विज्ञान है। वैज्ञानिक ज्ञान का व्यावहारिक उपयोग प्रौद्योगिकी है। मानव ने अपने जीवन में निर्वाह व भौतिक परिवेश को अपने हित में नियंत्रित करने हेतु उपकरणों के रूप में प्रौद्योगिकी का विकास किया। साक्षरता आने पर प्रौद्योगिकी, ज्ञान-विज्ञान को वैज्ञानिक सिद्धांतों के रूप में विकसित किया। इससे प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भावी विकास-सिद्धांतों पर आधारित नवीन प्रयोगों से बहुमूल्य सहायता मिली। नव विकसित उपकरण के विकास ने एक नवीन सामाजिक श्रेणी-शिल्पकार और कर्मकार को विकसित किया। उपकरणों ने वैज्ञानिक, ज्योतिष व गणितीय, भूगोल का मार्ग प्रशस्त किया।

धातुओं के उपयोग, सामरिक महत्व के रक्षा उपकरणों, अलंकरण की वस्तुओं, मुद्रा, वैश्विक जीवन में प्रयुक्त गृहस्थोपेगी सामग्री, कृषि कर्म में प्रयुक्त उपकरणों एवं स्थापत्यकला के ज्ञान की वृद्धि व उपभोग के साथ-साथ कई प्रारूप विकसित हुये, जैसे कि रसायन, धातु विज्ञान,

> बुरे मार्गों से अर्थ उपार्जन करने में व्यक्ति अपने शरीर को अधिक कष्ट देता है और समाज के भय से परेशान रहता है एवं उपार्जित अर्थ का सुखपूर्वक उपयोग भी नहीं कर सकता है।

कृषि विज्ञान, नगर निर्माण, ज्योतिष, रत्न विज्ञान, खनिज विज्ञान, अन्न विज्ञान, पेड़-पौधे विज्ञान, माप विज्ञान, पशु विज्ञान आदि।

मुगलों के भारत में प्रवेश के समय से पहले यानी 1500 शताब्दी से पूर्व भारत की अर्थव्यवस्था व्यापार, व्यवसाय व कामकारी (आटीसैंन्स) का कार्य अच्छी हालत में था। व्यवसाय व कारीगरी के कार्य फलफूल रहे थे। मुगलों के आगमन व शासनकाल में 1500 से 18वीं शताब्दी के बीच काफी बदलाव आया। सिर्फ बैंकिंग व महाजन के व्यवसाय को छोड़कर सभी व्यवसायियों और कामकारों, कारीगरों के कार्य में बदलाव आया। कामकारों के प्रति मुगलों का व्यवहार शोषणपूर्ण रहा। इस समय बहुत से कामकारी कारीगरों ने शोषण व अत्याचार से बचने के लिये धर्मांतरण किया। इन सब कारणों से 17वीं शताब्दी के बाद विश्व में हुई औद्योगिक क्रांति में भारत भाग नहीं ले पाया। आर्थिक इतीहासकार लिखते हैं कि 16वीं शताब्दी में भारत व यूरोप के व्यवसायिक ढांचे में बहुत ही समानता थी। कई व्यापारी राजाओं का होना, शहरों में व्यापारियों के समूह जिनके पास पर्याप्त पूंजी थी, कामकारियों के समूह थे, व्यापारियों व कामकारियों का राज्य के शासकों के साथ अच्छा संबंध था। भारतीय व्यापारी व कामकारी इस सबके औद्योगिक क्रांति में भाग नहीं ले पाने का कारण व्यवसाय व कामगारों के प्रति समाज में बदलता रवैया था। मुगल शासकों ने अपने शासन को चलाने के लिये किसानों से अतिरेक लिया। वे व्यापार व अन्य व्यवसायों में रुचि नहीं रखते थे। कुछ शासकों ने अपने यहां कारखानों का उपयोग सुन्दर व विलासी वस्तुओं को बनाने के लिये किया। मुगलों का मुख्य उद्देश्य व्यापारियों से अधिक से अधिक धन लेने का होता था।

यूरोप में हुई औद्यौगिक क्रांति ने कई नये उद्योग-धंधों को जन्म दिया। आज की औद्योगिक क्रांतियों को चार भागों में बांटा जाता है। प्रथम स्टीम इंजन, दूसरा बिजली निर्माण, तीसरा माइक्रो इलेक्ट्रॉनिक्स, व कम्प्यूटर

व चैथी वर्तमान में चल रही औद्योगिक क्रांति-रोबोट, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, बायोटेक आदि हैं। डिजिटल तकनीकी का उपयोग इसी का हिस्सा है। औद्योगिक क्रांतियों ने पिछले 300 वर्षों में जीवन के लिये अर्थ उपार्जन के साधनों व व्यवसायों में बहुत ही वृद्धि की है। इसका असर यह है कि व्यक्ति स्वरोजगार से वेतनभोगी कर्मचारी बन गया। उद्योग-धंधों का आकार बदल चला और फैक्टरी एक प्लाट से अनेकों प्लाटों व विभिन्न देशों में निर्माण को प्रोत्साहन मिला। वैश्वीकरण को भी बढ़ावा मिला। ग्रामीण अर्थव्यवस्था शहरी अर्थव्यवस्था में बदलती जा रही है। यूरोप व अमेरिका व जापान ने इस औद्योगिक क्रांतियों का उपयोग कर काफी उन्नति की।

भारत में भी नये उद्योग-धंधों की स्थापना हुई। शिक्षा का प्रचार प्रसार बढ़ा। यहां कृषि व कृषि आधारित उद्योग-धंधों-लघु व कुटीर उद्योग की बहुतायत थी। कुछ बड़े उद्योग भी लगाये गये। स्वतंत्रता के बाद इस क्षेत्र में काफी प्रगति हुई। आज भारत विश्व में पांचवी बड़ी अर्थव्यवस्था बन गया है।

आज चल रही औद्योगिक क्रांति व इण्डस्ट्री-4.0 की तकनीकी से बहुत बड़ा असर भारतीय अर्थव्यवस्था पर व उद्योग-धंधों व रोजगार पर पड़ रहा है। इस सबका असर व बढ़ते हुये आर्थिक अपराधों की चर्चा अगले भाग में की गई है।

नवभारत में अर्थ अर्जन में शुचिता, उद्यमिता व आर्थिक अपराध

स्वतंत्रता के पश्चात भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था का मॉडल अपनाया, जो पूंजीवादी व समाजवादी अर्थव्यवस्था का मिलाजुला रूप था। धीरे-धीरे अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों पर सरकारी नियंत्रण बढ़ता गया, जिसका बुरा प्रभाव अर्थव्यवस्था की गति पर पड़ा। देश लाइसेंस राज के रूप में बढ़ता गया। कुछ क्षेत्रों में प्रगति के बावजूद हम देश में गरीबी दूर नहीं

कर पाये। देश में उद्योग-धंधे तो लगे, परंतु अधिक प्रगति नहीं हो पायी। 1980 के बाद देश पर लाइसेंस राज में कमी आनी शुरू हुई। 1990 के उदारीकरण व वैश्वीकरण के प्रयोग ने देश की अर्थव्यवस्था में नया मोड़ लाया। उद्यमिता को अधिक प्रोत्साहन मिला, परंतु कुछ लघु व मंझौले उद्योग धंधे, विदेशी स्पर्धा के चलते बंद हो गये। उदारीकरण के साथ

लाइसेंस राज का संस्थागत नियंत्रण में परिवर्तन हो गया।

देश में अभी तक सरकारी नियंत्रण के उद्योग जैसे कि पॉवर, टेलीकॉम, इंफ्रास्ट्रक्चर, रोड आदि को प्राइवेट निवेश के लिये खोल दिया गया। सन 2000 आते-आते हमारे कई बड़े उद्योगपतियों ने विदेशों में अपने कार्य विस्तार किया। हमारी साफ्टवेयर व दवाई बनाने वाली कंपनियां व आटो मोबाइल ने अपना काफी विकास किया। इसके साथ-साथ बढ़ती हुई शिक्षा के साथ युवा वर्ग भी इस विकास में भाग लेता रहा। 2008 के विश्व वित्तीय संकट का भारत पर कम ही असर पड़ा।

इस बीच चतुर्थ औद्योगिक क्रांति के चलते इंटरनेटयुक्त व्यवसाय स्टार्ट अप आदि का जोर चल पड़ा। समाज में बढ़ती हुई शिक्षा व्यवस्था, पिछड़े लोगों का सशक्तीकरण, वैश्वीकरण, शहरीकरण और सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव ने जीवन शैली में परिवर्तन किया। डिजिटल तकनीकी के बढ़ते प्रयोग ने व्यक्तियों के एक दूसरे से संपर्क, कार्य करने के तरीके, व्यवसायों व कार्य निष्पादन के तरीकों में अभूतपूर्व परिवर्तन ला दिया।

आज डिजिटल तकनीक ने अर्थव्यवस्था के स्वरूप को बदल दिया है। व्यक्ति, व्यवसायों व सरकारी कार्यों में, उत्पादन, वितरण व भुगतान (पेमेंट) आदि सभी कार्यों पर डिजिटल तकनीक के उपयोग से अभूतपूर्व परिवर्तन ला दिया है।

आज व्यक्तियों के व्यवसायों व सरकार के कामकाज में परिवर्तन का

> कामकारों के प्रति मुगलों का व्यवहार शोषणपूर्ण रहा। इस समय बहुत से कामकारी कारीगरों ने शोषण व अत्याचार से बचने के लिये धर्मांतरण किया। इन सब कारणों से 17वीं शताब्दी के बाद विश्व में हुई औद्योगिक क्रांति में भारत भाग नहीं ले पाया।

असर रोजगार व अर्थ अर्जन के साधनों पर भी पड़ रहा है। आज के नये उद्योग धंधों में अधिक कार्य कुशल व्यक्तियों (हाई स्किल्ड वर्कर्स) की आवश्यकता पड़ रही हैं। पुराने उद्योग धंधे नवीन तकनीक का प्रयोग कर रहे हैं, जिससे रोजगार के कम अवसर उत्पन्न हो रहे हैं।

आज की परिस्थिति में उद्यमिता की आवश्यकता बढ़ गई है। भारत वर्ष

में अभी भी विकास की गति बढ़ने के व रोजगार-स्वरोजगार के पर्याप्त अवसर हैं। हमारी अपनी पुरानी समस्याओं के साथ-साथ, नयी समस्याएं जैसे पर्यावरण व जलवायु परिवर्तन की समस्या बढ़ रही है। इसके लिये प्रकृति अनुकूल कार्यों की आवश्यकता है। ऐसे प्रयोगों से हम ग्रामीण जीवन आधारित अर्थव्यवस्था को पुर्नजीवित कर, गरीबी को दूर कर समृद्धि ला सकते हैं। हमें आधुनिक तकनीक का उपयोग बड़े और आधारभूत उद्योगों में करने की आवश्कता है, परंतु साथ ही साथ रोजगार के अवसर भी उपलब्ध कराने हैं। स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी आधुनिक तकनीकी का काफी उपयोग है। इससे हम स्वास्थ्य सेवाओं को दूर दराज के क्षेत्रों तक ले जा सकते हैं।

130 करोड़ की जनसंख्या वाले भारत देश में काफी समस्याएं हैं। यदि हम उचित शिक्षा के साथ उद्यमिता को बढ़ाते हुये, समस्याओं को सुलझाने पर जोर देते हुये योग्यता का विकासकर युवा शक्ति को तैयार करे तो देश के युवा को कार्य, रोजगार व स्वरोजगार भी मिलेगा और देश भी प्रगति करेगा। इसके लिये हमें आधुनिक तकनीकी का उचित उपयोग करते हुये रोजगार के अधिक अवसर प्रदान करते हुये कार्य करने की आवश्यकता है।

बढ़ते आर्थिक अपराध

यहां अर्थ अर्जन में शुचिता को भुलाया नहीं जा सकता है। यदि हम स्वतंत्रता के बाद की बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था व सरकारी अर्थनीति को देखें तो पाते हैं कि आर्थिक अपराधों का स्वरूप भी बदलता रहा है। चोरबाजारी, लूटपाट, कालाबाजार, भ्रष्टाचार, रिश्वतरखोरी अदि का बोलबाला हमेशा रहा है। इसके निवारण के लिये सरकार द्वारा उपाय भी किये जाते रहे हैं। देश के नेताओं, व्यवसायियों व सरकारी कर्मचारियों द्वारा भ्रष्टाचार हमेशा चर्चा का विषय रहा है।

1960 में मुद्रा स्कैम, 1990 में हर्षद मेहता स्कैम, 2000 में केतन मेहता स्कैम, 2010 के बाद टूजी स्कैम, केतन मेहता मेडिकल कौंसिल स्कैम, नीरव मोदी, माल्या फ्रॉड आदि स्कैम चर्चा में रहे हैं। यह सभी पब्लिक सिस्टम से भ्रष्टाचार व गलत ढंग से पैसा बनाने से संबंधित है। इन्होंने अपने स्वार्थ के लिये दूसरों को, समाज को हानि पहुंचाई। इन सभी स्कैमों में पैसे की संख्या बढ़ती चली गयी। 1960 में जो लाखों की हेराफेरी होती थी वह 2010 के बाद हजारों करोड़ में होने लगी। वैश्वीकरण उदारीकरण से पूर्व व बाद के समय में इन आर्थिक अपराधों के स्वरूप में परिवर्तन आया है।

आज जेहादी आतंकवादी भी पैसा बनाने व बांटने का धंधा करते हैं। सरकारी अफसर, वकील, जज, पुलिस आदि इस कार्य में गलत ढंग से पैसा बनाते हैं। विदेशों से पैसा लेकर देश में दंगा-फसाद व विरोध को भड़काने का काम भी किया जाता है।

प्रकृति का अत्यधिक व अनुचित शोषण कर, पर्यावरण को नुकसान पहुंचा, धन की वृद्धि करना भी एक दोष है। डिजिटल तकनीक का प्रयोग बढ़ने से डिजिटल क्राइम भी बढ़ते चले जा रहे हैं। इसमें कम्प्यूटर नेटवर्क व यंत्रों का उपयोग कर लोगों से पैसा ऐठने का काम किया जाता है। लोगों की प्राइवेट डेटा को भी बेच कर पैसा बनाया जाता है। इस सबको भी ध्यान में रखते हुये नियम व कानून बनाने की आवश्यकता है।

कुल मिलाकर स्वतंत्रता के बाद देश में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ है। अर्थ अर्जन के नये साधन व उद्योग धंधों का विकास हुआ है। इन सबमें शुचिता को ध्यान में रखने की आवश्यकता है। उद्यमिता व शुचिता दोनों अर्थ उपार्जन में सहायक व मानसिक शंति को प्रदान करते हैं।

निष्कर्ष

अर्थ उपार्जन व्यक्ति व समाज के जीवन यापन व सभी इच्छाओं व आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये आवश्यक है। इसके लिये उत्साहपूर्वक, सम्मानजनक रूप से ईमानदारी से प्रयत्न करना चाहिये। इसमें शुचिता व उद्यमिता दोनों आवश्यक हैं। भारतीय संस्कृति में अर्थ को अन्य पुरुषार्थ व लक्ष्यों के साथ सम्मानित दृष्टि से देखा गया है। इसके लिये धर्मयुक्त व्यवहार व शुचिता को अपनाना चाहिये। सारांश में, अर्थ अर्जन के लिये स्वयं के प्रयत्न व परिश्रम से, अपने शरीर व मस्तिष्क का ध्यान रख, ज्ञान अर्जन एवं स्वाध्याय में बाधाए न आयें व पर्यावरण का ध्यान रखते हुये उचित मार्ग से न्यायपूर्ण व नैतिकतापूर्वक धन का उपार्जन करना चाहिये। इस विषय में कुछ नीतिगत सुझाव हैं।

सर्वप्रथम देश की शिक्षा नीति व पद्धति में परिवर्तन लाते हुये अर्थ उपार्जन

के लिये योग्यता के महत्व का ज्ञान देने के साथ उद्यमिता व शुचिता पर जोर दिया जाना चाहिये।

दूसरा, समाज के सभी क्षेत्रों में शुचिता व उद्यमिता व उद्योग को बढ़ावा देने के लिये सामाजिक व धार्मिक संस्थाओं व विद्वानों का सहयोग लेना चाहिये। धार्मिक गुरुओं को भी इस कार्य में भाग लेने के लिये निवेदन करना चाहिये।

तृतीय, शासन व राज्य द्वारा संचालित सभी योजनाओं व कल्याण कार्यों में पारदर्शिता लाते हुये भ्रष्टाचार पर रोक लगानी चाहिये।

चतुर्थ, साइबर क्राइम की बढ़ती हुयी घटनाओं को देखते हुये लोगों को शिक्षित करना, कानून बनाना, इसके स्त्रोतों को नियंत्रण करना व अन्य संस्थानों व व्यक्तियों का आपस में सहयोग बढ़ाना चाहिये।

अंत में सरकार को नियम व कानून बनाकर जो व्यक्ति व संस्थाएं इनका पालन न करें, उन्हें दंडित करना चाहिये। ■

राष्ट्रवाद और राजनीति

उमेश चतुर्वेदी
वरिष्ठ पत्रकार, स्तंभकार,
कंसल्टेंट, आकाशवाणी समाचार

भारत की केंद्रीय राजनीति में भारतीय जनता पार्टी के उत्थान के बाद अगर कोई विषय सार्वजनिक विमर्श के केंद्रीय दायरे में है तो निःसंदेह वह विषय राष्ट्रवाद है। राष्ट्रवाद क्या है, इसे लेकर विद्वत्त जन बहुत कुछ लिख-बोल चुके हैं। आज का राष्ट्रवाद चूंकि अंग्रेजी शब्द नेशनलिज्म के पर्याय के रूप में ज्यादा इस्तेमाल हो रहा है, इसलिए इसने आज के दौर में वही अर्थ ग्रहण कर लिया है, जो यूरोप के नेशन से प्रभावित है।

यूरोप में राष्ट्र-राज्य की अवधारणा के साथ ही विकसित राष्ट्र को लेकर मान्यता है कि वह लोगों का एक ऐसा समुदाय होता है, जो अपनी आकांक्षाओं, अपने इतिहास को पुनर्स्थापित करने वाली विचारधारा को बढ़ावा देता है। जिसके लिए एक राजनीतिक इकाई जरूरी होती है। यूरोप में राष्ट्र राज्य की जो अवधारणा विकसित हुई है, उसके लिए बुनियादी तीन आधार माने गए हैं, भूभाग, जनसंख्या और और संप्रभुता। लेकिन भारतीय अवधारणा में एक और तत्व जुड़ता है और वह है संस्कृति। पंडित दीनदयाल उपाध्याय इसे ही चित्ति का विस्तार कहते हैं। भारत में राष्ट्र की

अवधारणा को देखना हो तो हमें अपने आदि ग्रंथों वेदों की ओर देखना होगा। अथर्ववेद' के भूमि सूक्त में राष्ट्र की जो अवधारणा है, वही हमारी भारतीय अवधारणा है। उसे ही स्वीकार करने वाला विचार राष्ट्रवाद है।

अथर्ववेद के बारहवें कांड के प्रथम सूक्त में 63 ऐसी ऋचाएं हैं, जिनमें सिर्फ पृथ्वी की ही स्तुति की गई है। इन ऋचाओं में भूमि यानी पृथ्वी को माता की तरह माना गया है। इसी वजह से इस खंड को 'भूमि सूक्त' कहा जाता है। इस सूक्त की कुछ ऋचाओं में भूमि को न सिर्फ माता कहा गया है, बल्कि उसका रक्षक इंद्र को बताया गया है। भूमि सूक्त के बारहवीं ऋचा में कहा गया है कि माता भूमिः पुत्रोहं पृथिव्याः। यानी पृथ्वी हमारी माता है और हम इसके पुत्र हैं। इसी 'भूमि सूक्त' की दसवीं ऋचा में मातृभूमि के लिए इन शब्दों का उल्लेख हुआ है, सा नौ भूमिर्विसजतां माता पुत्राय मे पयः। यानी मातृभूमि मुझ पुत्र के लिए दूध आदि शक्ति प्रदायी पदार्थ प्रदान करे। सिर्फ अथर्ववेद ही नहीं, 'यजुर्वेद' में भी पृथ्वी को माता कहा गया है। यजुर्वेद के 9वें अध्याय में कहा गया है-नमो मात्रे पृथिव्ये, नमो मात्रे पृथिव्याः। यानी माता पृथ्वी (मातृभूमि) को नमस्कार है, मातृभूमि को नमस्कार है। यजुर्वेद के ही दसवें अध्याय में मातृभूमि की वंदना करते हुए कहा गया है- पृथ्वी मातर्मा हिंसीर्मा अहं त्वाम्। अर्थात हे मातृभूमि! न तू हमारी हिंसा कर और न हम तेरी हिंसा करें।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि हमारे यहां पृथ्वी को आधुनिक अर्थों में राष्ट्र मानने से कहीं ज्यादा उसे माता माना गया है। शायद यही वजह है कि जब भी किसी भारतीय के मन में राष्ट्र की कल्पना होती है तो उसके मन में भारत माता का ही बिम्ब उभर कर सामने आता है। जन्मभूमि को माता मानने की अवधारणा हमें वाल्मीकि रामायण में भी दिखती है। वाल्मीकि रामायण में यह विचार दो श्लोकों के रूप में दिखता है। 'हिन्दी प्रचार सभा मद्रास' द्वारा 1930 में सम्पादित वाल्मीकि रामायण के संस्करण में जो श्लोक है, वह इस रूप में है,

मित्राणि धन धान्यानि प्रजानां सम्मतानिव ।
जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ॥

यानी भारद्वाज ऋषि राम से कहते हैं कि मित्र, धन्य, धान्य आदि का

> हमारे यहां पृथ्वी को आधुनिक अर्थों में राष्ट्र मानने से कहीं ज्यादा उसे माता माना गया है। शायद यही वजह है कि जब भी किसी भारतीय के मन में राष्ट्र की कल्पना होती है तो उसके मन में भारत माता का ही बिम्ब उभर कर सामने आता है।

संसार में बहुत अधिक सम्मान है। (किन्तु) माता और मातृभूमि का स्थान स्वर्ग से भी ऊपर है। हालांकि इसी श्लोक का दूसरा रूप भी बाल्मीकि रामायाण की कुछ पांडुलिपियों में मिलता है। इसमें लंका में रहते हुए राम अनुज लक्ष्मण से कहते हैं,

अपि स्वर्णमयी लङ्का न मे लक्ष्मण रोचते ।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ॥

यानी हे लक्ष्मण! यद्यपि यह लंका सोने की बनी है, फिर भी इसमें मेरी कोई रुचि नहीं है। (क्योंकि) जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान हैं।

महाभारत यक्ष और युधिष्ठिर के संवाद में हम देखते हैं कि राष्ट्र, पृथ्वी और आकाश का जिक्र मिलता है। भारत में भी का राष्ट्र के रूप में विचार हजारों हजार साल से है। इसीलिए भारतीय राष्ट्र की सीमाएं दूर-दूर तक फैली थीं, उनमें राजनीतिक एकता भले ही नहीं थी, राजाओं के बीच आपसी लड़ाइयां भी थीं। अपनी सीमाएं और प्रभाव बढ़ाने के लिए वे लड़ते रहे, इसके बावजूद भारतीय सीमाओं के भीतर सांस्कृतिक एकता थी। जिसके मूल में मानवता की रक्षा, पर्यावरण को अपने परिवार का हिस्सा मानना और अपनी सांस्कृतिक धरोहर पर गर्व करना था। गर्व का यह भाव हमारी आध्यात्मिकता देता थी। सही मायने में कहें तो भारतीय राष्ट्र राज्य की सांस्कृतिक एकता को जोड़ने वाला तत्व अध्यात्म रहा।

लेकिन अठारहवीं सदी में भारत में आधुनिक अर्थों में राष्ट्र राज्य की सोच को बढ़ावा मिला। सबसे पहले यह अवधारणा बंगाल की माटी में फली-फूली। लेकिन यह अवधारणा भी भारत माता के साथ ही आगे बढ़ी। लालूप्रसाद एस राजभर के एक शोध लेख के मुताबिक भारत माता की छवि पहली बार बंगाल की धरती पर भारत के पहले स्वाधीनता संग्राम की तैयारी के दौरान बनी। यह दौर उन्नीसवीं सदी का आखिरी दौर था। लालूप्रसाद एस राजभर के मुताबिक मशहूर बांग्ला लेखक और साहित्यकार भूदेव मुखोपाध्याय के 1866 में लिखे व्यंग्य झ 'उनाबिम्सा पुराणा' में पहली बार 'भारत-माता' की छवि उभरती है। इस व्यंग्य में भूदेव ने भारत माता के लिए 'आदि-भारती' शब्द का प्रयोग किया था। इसके बाद बंगाल के ही एक अन्य लेखक किरण चन्द्र बन्दोपाध्याय ने एक नाटक लिखा, भारत माता। इसका पहला मंचन साल 1873 में हुआ। इसके साथ ही पढ़े-लिखे लोगों के बीच भारत माता शब्द का प्रचलन बढ़ने लगा। इसे सबसे ज्यादा प्रसिद्धि बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय के मशहूर उपन्यास आनंदमठ के प्रकाशन के बाद मिली। सन 1882 में प्रकाशित इसी उपन्यास में उन्होंने वन्दे मातरम् गीत सम्मिलित किया था, जो देखते ही देखते आजादी के आन्दोलन का प्रमुख गीत गीत बन गया। आज जो भारत माता का चित्र हम राष्ट्रीय मंचों पर देखते हैं, उसकी कल्पना सबसे पहले 1905 में बंग भंग आंदोलन के दौरान बंगाल के प्रसिद्ध चित्रकार अवनींद्र नाथ टैगोर ने बनाया था। जिसमें चारभुजाओं वाली भारतमाता को देवी के रूप में दिखाया गया है। अवनींद्र नाथ के चित्र में यह भारत माता भगवा वस्त्र धारण किए हुए है। जिनके एक हाथ में पुस्तक, दूसरे में माला, तीसरे में श्वेत वस्त्र तथा चौथे में धान की बाली है। इसी छवि को लेकर वाराणसी से प्रकाशित होते रहे मशहूर हिंदी अखबार आज के संस्थापक और वाराणसी के मशहूर कारोबारी शिवप्रसाद गुप्त ने सन 1936 में वाराणसी में भारतमाता का मन्दिर निर्मित कराया। जिसका उद्घाटन खुद गांधीजी ने किया था। इसके बाद साल 1983 में हरिद्वार में विश्व हिन्दू परिषद ने भारतमाता का मन्दिर बनवाया।

आजादी के आंदोलन के दौरान भारतीय विचारधारा का प्रतीक यही राष्ट्रवाद था। इस राष्ट्रवाद में आधुनिक राष्ट्रराज्य के मुताबिक अटूट और अविभक्त राष्ट्र की भौगोलिक अवधारणा तो थी ही, समृद्ध विरासत से जुड़ते सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के तार भी थे। तब चाहे गांधी हों या पटेल या फिर दूसरे आंदोलनकारी, आजाद भारत को इसी सपने की बुनियाद पर सजाने और आगे बढ़ाने की कार्ययोजना लेकर चल रहे थे। उत्कट राष्ट्रवाद के सहारे नए भारत के निर्माण का यह सपना ही था कि भारत का जब संविधान लिखा गया तो उसकी मानक प्रतियों को नंदलाल बोस के बनाए चित्रों से सजाया गया। उस प्रति के हर पृष्ठ के चौतरफा किनारों पर राम-सीता के चित्र बने हैं। भारतीयता से ओतप्रोत यह राष्ट्रवाद ही था, जिसने संसद की दीवारों पर वेद ऋचाओं को उकेरने की प्रेरणा दी। लेकिन आजादी के बाद जैसे-जैसे आजाद कराने वाली पीढ़ी दिवंगत होती गई, प्रगतिशील बौद्धिक धारा

के प्रति तत्कालीन शासक दल खासकर जवाहर लाल नेहरू का झुकाव बढ़ता गया, भारती राष्ट्र की यह अवधारणा धूमिल पड़ती गई। गांधी खुद को गर्व से हिंदू कह सकते थे, भारतीय राष्ट्रवाद के प्रमुख स्तंभ के रूप में हिंदू समाज की वर्ण व्यवस्था को स्वीकार कर सकते थे, लेकिन बाद के दौर में भारतीय राष्ट्र विचार के तमाम पारंपरिक स्रोतों को ढपोरशंखी बताने की कोशिश शुरू हुई। सर्वधर्म समभाव के नाम पर हिंदू विचारधारा को लगातार किनारे किया गया। हिंदुत्व की बात करना पिछड़ेपन और सांप्रदायिकता का प्रतीक बताया जाने लगा। रही-सही कसर तुष्टिकरण और वोट बैंक की राजनीति ने पूरी कर दी। भारत के मुस्लिम समाज को वोट बैंक की तरह इस्तेमाल किया जाने लगा। अल्पसंख्यक समाज को बहुसंख्यक हिंदू समाज के बरक्स लगातार डराया जाता रहा। इस बहाने उसे हिंदू समाज के खिलाफ राजनीतिक तौर पर ज्यादा विरोधी बनाया गया। सर्वधर्म समभाव की बात का मतलब हिंदुत्व का विरोध, हिंदू परंपरा का विरोध, हिंदू ज्ञानधारा का विरोध, हिंदू अध्यात्म का विरोध बनता गया।

वहीं अल्पसंख्यक समुदाय के लिए उनकी परंपरा मानना, उनके सांस्कृतिक पुनरूत्थान को धार्मिक समानता के संदर्भ से जोड़ दिया गया। इस तरह उनके सारे धार्मिक और अल्पसंख्यकवादी सांस्कृतिक कर्म राजनीति के परकोटे में निर्भयी ढंग से विचरण करते रहे। उनके नमाज, उनकी इफ्तार पार्टी आदि का आयोजन प्रगतिशीलता का पर्याय माना जाने लगा, जबकि हिंदुत्ववादी दर्शन का स्वीकार अतिवादी और सर्वधर्मसमभाव की अवधारणा का विरोधी बताया जाने लगा। मार्क्स के प्रसिद्ध कथन, धर्म अफीम होता है के संदर्भ में हिंदुत्ववादी धार्मिक व्यवस्था को अफीम तो बताया गया, लेकिन अल्पसंख्यकवादी धार्मिक परंपराओं को अमृत प्रधान और प्रगतिशीलता के उदाहरण के तौर पर स्वीकार किया गया। आजादी के बाद दूसरी धारा की राजनीति की अगुआई उस कांग्रेस ने की, जिसने आजादी के पहले भारत माता की अवधारणा को ही स्वीकार किया था। कांग्रेस का वैचारिक स्तर पर सहयोग वामपंथी और समाजवादी दलों से मिला। जबकि भारतीय अध्यात्म की बुनियाद पर खड़े राष्ट्रीय विचार की राजनीति सिर्फ भारतीय जनसंघ और बाद के दौर में उसके परवर्ती रूप भारतीय जनता पार्टी ने की। इसमें शिवसेना जैसी एक-दो पार्टियां सहयोगी रहीं। चूंकि पाठ्यक्रम भी दूसरी धारा को तवज्जो देने वाली विचारधारा प्रभावित रहे, लिहाजा करीब दो पीढ़ियां इसी विचार को मानते हुए आगे बढ़ीं। इसके चलते देश

> भारत में भी का राष्ट्र के रूप में विचार हजारों हजार साल से है। इसीलिए भारतीय राष्ट्र की सीमाएं दूर-दूर तक फैली थीं, उनमें राजनीतिक एकता भले ही नहीं थी, राजाओं के बीच आपसी लड़ाइयां भी थीं। अपनी सीमाएं और प्रभाव बढ़ाने के लिए वे लड़ते रहे, इसके बावजूद भारतीय सीमाओं के भीतर सांस्कृतिक एकता थी। जिसके मूल में मानवता की रक्षा, पर्यावरण को अपने परिवार का हिस्सा मानना और अपनी सांस्कृतिक धरोहर पर गर्व करना था। गर्व का यह भाव हमारी आध्यात्मिकता देता थी। सही मायने में कहें तो भारतीय राष्ट्र राज्य की सांस्कृतिक एकता को जोड़ने वाला तत्व अध्यात्म रहा।

में समाजवादी, वामपंथी और कांग्रेसी विचारधारा की राजनीति को हमारा लोकतांत्रिक समाज तवज्जो देता रहा। लेकिन राममंदिर आंदोलन ने वामपंथ और कांग्रेस के अल्पसंख्यकवादी विचारधारा की पोल खोलकर रख दी। वैसे इसकी शुरूआत 1986 में शाहबानो मामले से हो गई, जब अल्पसंख्यक यानी मुस्लिम विचारधारा को तवज्जो देने के लिए संविधान संशोधन ही कर दिया गया। इसके बाद से भारतीय राजनीति में विचलन की शुरूआत हुई। जाहिर है कि बहुसंख्यक समाज की आंखें खुलने लगीं, उसे समझ में आने लगा कि भारतीय आध्यात्मिक और सांस्कृतिक बुनियाद पर खड़ा राष्ट्रवाद जानबूझकर किनारे लगाया जा रहा है। जबकि अल्पसंख्यकवाद को प्रगतिवाद के नाम पर बढ़ाया जा रहा। भारतीय जनता पार्टी के उभार की वजह सोच में आया यह बदलाव ही रहा। चूंकि बहुसंख्यकवाद की राजनीति के बरक्स अल्पसंख्यकवाद को बहुसंख्य समाज का समर्थन नहीं मिल रहा है, लिहाजा बहुसंख्यकवाद की विचारधारा, संस्कृति और अध्यात्म की बुनियाद पर खड़े राष्ट्रीय विचार और उसे मानने वाली ताकतों को निबटाने के लिए कई तरह के षड्यंत्र भी किये जा रहे हैं। आए दिन नए तरह के नैरेटिव खड़े करके एक तरह से इस विचारधारा को आधुनिकता और विकास विरोधी बताया जाने लगा है। इसके साथ ही हालिया इतिहास की उदात्त परंपराओं को भी नकारा जाने लगा है। बौद्धिक समाज द्वारा हिंदुत्व की अवहेलना को इसी कोटि में रखा जाना चाहिए।

लेकिन यह बहुत दिन चलने वाला नहीं है। राष्ट्रीय विचार की राजनीति ने अब अपनी जड़े जमानी शुरू कर दी है। माता भूमि, पुत्रो हं पृथिव्या की अवधारणा को मानने ही नहीं, समझने वाली पीढ़ी तैयार हो रही है।

उपाध्यक्ष, भारतीय शिक्षण मंडल, दिल्ली प्रांत
पूर्व राष्ट्रीय समन्वयक
आकाशवाणी लोकसंपदा संरक्षण महापरियोजना
पूर्व संपादक दक्षेस संस्कृति
(दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन के सदस्य देशों के साहित्य और संस्कृति को समर्पित पत्रिका)

भारत में वर्तमान शिक्षाः दशा व दिशा

वेद प्रकाश
एनसीईआरटी के पूर्व वरिष्ठ अधिकारी

वेद प्रकाश,
पूर्व अवर सचिव, एनसीईआरटी

प्राचीन काल से ही भारतीय शिक्षा विश्व में गौरवशाली संस्कृति एवं प्रगति का मूल आधार रही है तथा इसी कारण भारत विश्व गुरु के रुप में माना जाता रहा है। प्राचीन भारतीय शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास था। वैदिक युग से ही शिक्षा को प्रकाश का स्रोत माना गया है जो मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को आलोकित करते हुए दिशा निर्धारित करता है। महाभारत में भी वर्णित है कि विद्या के समान नेत्र व सत्य के समान तप नहीं। (नास्ति विद्यासमं चक्षुनारित सत्य समतपः)

पुर्व वैदिक काल में शिक्षा का मुख्य पाठयक्रम वैदिक साहित्य का अध्ययन था, जिसमें वैदिक ऊंचाई के अतिरिक्त इतिहास, पुराण व नाराशंस गाथाएं एवं खगोल विद्या आदि भी अध्ययन के विषय थे। सूत्र युग के अन्त तक आते-आते वैदिक साहित्य का अध्ययन कम हो गया तथा इसके स्थान पर अन्य विषयों का समावेश पाठयक्रम में कर लिया गया।

प्राचीन भारतीय साहित्य तथा विदेशी यात्रियों के विवरण से भी ज्ञात होता है कि शिक्षा के पाठयक्रम में चार वेद, छह वेदांग, चैदह विद्याएं, अठारह शिल्प, चैंसठ कलाएं, पुराण, धर्मशास्त्र सम्मिलित थे। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का मुख्य तत्व गुरुकुल व्यसथा जो 1850 तक जारी थी।

भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना के साथ ही इस्लामी शिक्षा का प्रसार होने लगा व फारसी जानने वाले ही सरकारी कार्यों के योग्य समझे जाने लगे। इस्लाम के संरक्षण और प्रचार के लिए मस्जिद तथा मकबरों और पुस्तकालयों की स्थापना होने लगी।

भारत के आधुनिक काल में शिक्षा की नींव यूरोपीय ईसाई धर्मप्रचारकों तथा व्यापारियों के हाथों में चली गई। ब्रिटिश काल में शिक्षा में मिशनरियों का प्रवेश हुआ तथा भारतीयों की एकता को नष्ट करने के लिए मैकाले ने उस शिक्षा प्रणाली को लागू किया जो पश्चिमी सभ्यता के प्रति आकर्षण पैदा कर सके तथा संस्कृत, फारसी व अन्य अन्य भाषाओं का वर्चस्व तोड़ा जा सके।

आजादी के बाद सरकार ने सन् 1948 में डा. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग का गठन किया परन्तु आजादी के वर्षो बाद भी हमारी शिक्षा पर अंग्रेजों द्वारा प्रचलित शिक्षा का प्रभाव सपषट नजर आता रहा।

सन् 1964 में कोठारी शिक्षा आयोग का गठन किया गया जिस कारण देश में 1986 में नई शिक्षा नीति आई। सन 1986 को किसी हद तक शिक्षा में बदलाव का वर्ष भी कहा जा सकता है। इसी वर्ष मानव संसाधन विकास मंत्रालय का सृजन किया गया। तत्पश्चात 1990 में आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया जिसनें केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड के गठन के साथ साथ नवोदय विधालय का सृजन, माध्यमिक शिक्षा को व्यसायपरक बनाना, उच्च शिक्षा में विविध प्रकार की जानकारी एवं राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली में एक समान पाठ्यक्रम रखने का प्रावधान किया गया। आचार्य राममूर्ति समिति ने लोगों को अधिक अवसर उपलब्ध करवाने व उच्च शिक्षा व तकनीकी शिक्षा को मजबूत बनाने पर जोर दिया।

भारत विश्व में सर्वश्रेष्ठ साइंसदान, इन्जीनियर व डाक्टर पैदा करने के लिए जाना जाता रहा है। वहीं, मध्य स्तर पर ज्यादातर छात्रों की निर्भरता नौकरियों पर बढी जिस कारण बेरोजगारी बढी। शिक्षा को व्यसाय से जोड़ने में वर्तमान शिक्षा प्रणाली असफल रही।

शिक्षा जगत में एक ऐसा काल भी आया जब कुछ देशों ने भारतीय शिक्षा के स्तर को गिराने हेतु भारत के राजनीतिक व शिक्षावादों के साथ मिलकर साजिश की तथा इस कड़ी में सर्वप्रथम स्कूली शिक्षा पर कुठाराघात किया गया जिसमें सर्वप्रथम 'आठवी कक्षा तक नो डिटैंशन पॉलिसी' लागू की गई जिसका परिणाम यह हुआ कि पांचवी कक्षा का छात्र हासिल का सवाल तथा आठवीं का छात्र बटे का सवाल नहीं कर

पाता था। पच्चीस राज्यों के विरोध के बावजूद इस पॉलिसी को जारी रखा गया। वर्तमान सरकार ने 2019 में संसद से पारित करवा कर नो डिटैंशन पोलिसी को खत्म किया।

वर्तमान सरकार सन- 2014 में शिक्षा बजट को जीडीपी के 3.8 प्रतिशत से सन 2019 में 4.6 प्रतिशत तक ले गई जो कि अभी भी 6 प्रतिशत के लक्ष्य से थोड़ा दूर है। यूपीए सरकार ने शिक्षा सेस लगाकर शिक्षा मे पैसे की कमी को दूर करने का प्रयास किया, परन्तु शिक्षा सेस के पैसे को सही मद में खर्च न कर पाना शिक्षा में पैसे की कमी को दूर करने मे असमर्थ रहा।

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति चरित्र निर्माण के लक्ष्य को हासिल करने में सफल रही, वहीं वर्तमान शिक्षा में नीति नैतिक शिक्षा पर कोई

जोर नहीं दिया जाता।

वर्तमान शिक्षा केवल पैसा कमाने पर जोर देती है व चरित्र निर्माण पर जोर नहीं दिया जाता। प्राचीन शिक्षा पेपर रहित व जीवन भर याद रहती थी, वहीं वर्तमान शिक्षा नोटबुक और किताबों से बढकर प्रोजेक्ट, टैबलेट और गूगल तक सीमित रह गई है।

आशा तो थी कि एन.डी.ए-1 में ही नई शिक्षा नीति बन कर इसे लागू करने की शुरूआत हो जाएगी, परन्तु ज्ञात हुआ है कि एन.डी.ए-2 सरकार 34 वर्ष बाद बनने वाली शिक्षा नीति को व्यापक विचार विमर्श व राय मशवरे के बाद ही लागू करना चाहती है ।एनडीए सरकार शिक्षा नीति बनाने हेतु दो समितियों का गठन कर चुकी है। विद्वान कसतूरीरंगन ने अपनी रिपोर्ट मानव संसाधन विकास मंत्रालय को सौंप दी है तथा मंत्रालय ने आम जनता के सुझाव व शिक्षावादों से सलाह मशविरा भी किया जा रहा है।

नई शिक्षा नीति में राज्य विद्यालय नियामक प्राधिकरण बना कर राज्य बोर्ड के पाठ्यक्रम पर अपना नियंत्रण व पाठ्यक्रम में एकरूपता लाना चाहेगी। सभी शिक्षा निदेशालयों का निजी स्कूलों पर भी नियंत्रण रखने का प्रयास किया जाएगा।

एनडीए-2 सरकार प्रथम छह माह में ही संसद् से मंजूर करवा कर जो कानून लागू करने का प्रयास किया तथा जिस प्रकार कुछ मुट्ठी भर लोग उसका विरोध करके वातावरण दूषित करने का प्रयास कर रहे हैं, उसके मद्देनजर यह समझा जा सकता है कि सरकार जितनी भी ईमानदारी से देश व छात्रों के भविष्य उज्जवल भविष्य के लिए प्रयास कर ले, भगवाकरण के आरोप से बचा नहीं जा सकता।

नई शिक्षा नीति में स्कूली शिक्षा के पाठयक्रम को इस प्रकार सम्पादित करना होगा कि छोटे बच्चों पर बैग का बोझ कम हो परन्तु शिक्षा की गुणवत्ता में कमी न आए। जब कोई छात्र बारहवीं कक्षा की शिक्षा पूरी कर निकले तो उसमें इतना आत्मविश्वास हो कि वो केवल डिग्री की तरफ न भागे बल्कि रोजगार के साथ अपनी शिक्षा को बढाए। स्कूली शिक्षा के पाठयक्रम मे व्यवसायिक शिक्षा पर जोर दिया जाना चाहिए। आठवीं कक्षा के बाद ही छात्र उस विषय पर ज्यादा ध्यान दे जिसमें उसकी ज्यादा रूचि है तथा बाकी विषय स्वैच्छिक होने चाहिए, ताकि जब वह बारहवीं की परीक्षा उत्तीर्ण करके निकले तो रुचि वाले विषय में पूर्णतया प्रवीण हो व उसी क्षेत्र मे अपना कैरियर बना सके।

उच्च शिक्षा तो शत प्रतिशत तकनीक उन्मुख व राष्ट्र निर्माण में योगदान से ओतप्रोत होनी चाहिए। जब भी कोई नौजवान डिग्री लेकर कालेज से लेकर निकले तो वह नौकरी के लिए न भागे, अपना व्यसाय स्थापित कर अन्य नौजवानों को रोजगार देकर राष्ट्र निर्माण व उत्थान में भागीदार बने। सरकार ऐसे नौजवानों को प्रोत्साहन देने हेतु केवल योजनाएं ही न बनाए, बल्कि यह निश्चित भी करे कि उन योजनाओं का लाभ वास्तविक रूप से नये नौजवान उद्यमियों को मिले।

यदि सरकार शिक्षा क्षेत्र में उल्लेखनीय सुधार लाना चाहती है, तो उसे नई शिक्षा नीति में स्कूली शिक्षकों के जीवन स्तर, उनको दी जाने वाली सुविधाएं व वेतन पर भी ध्यान देना होगा, ताकि वे प्राइवेंट टयूशन को बढावा न देकर क्लास में ही छात्रों को शिक्षा देने पर अधिक ध्यान दें।

भारत सरकार के सम्मुख नई शिक्षा नीति के कार्यान्वयन की बड़ी चुनौती होगी ताकि सरकार जो भी बडे बदलाव ला कर शिक्षा को तकनीक के माध्यम से रोजगार व व्यसाय उन्मुख बनाना चाहती है, उसके परिणामों को पा कर देश को दुनिया में अग्रणी बना सके।

गत चालीस वर्षो से शिक्षण संसथान में कार्यरत, सरकारी कर्मचारियों के अधिकारो हेतू संघर्षरत व राजनैतिक विश्लेषक

कैसे हो मानव का भारतीयकरण

डॉ अंजनी कुमार झा

भारत रत्न अटल बिहारी वाजपेई ने कहा था, 'भारत जमीन का एक टुकड़ा नहीं ,जीता जागता राष्ट्रपुरुष है। .....हम जीते हैं तो इसके लिये, मरेंगे तो इसके लिए।' देश के हर एक नागरिक की यही दृष्टि और ऐसे विचार ही विविधताओं के बावजूद भारत से जुड़ने का भाव तथा भारतीय तत्वों की झलक दिखाता है। इसके द्वारा भारत की भूमि, जन, संप्रभुता, भाषा और संस्कृति का संवर्धन, बा' एवं अन्तःकरण का शुद्धिकरण, सात्विकता और भारतीय जीवन मूल्यों के प्रति निष्ठा में अभिवृद्धि होती है। भारतीयकरण से सुसंस्कृत हुई हमारी सोच ही तो देश के जन-जन में आत्मानुशासन, संयम, सहिष्णुता, त्याग, सौहार्द्य, सहअस्तित्व, विश्वबंधुत्व और सामाजिक समरसता एवं राष्ट्र सम्मान का भाव जागृत करती है।

यशस्वी इतिहासकार राधा कमल मुखर्जी ने भारतीयता को परिभाषित करते हुए लिखा है कि यह वह तत्व है जो सामाजिक, नैतिक एवं कलात्मक क्षेत्रों को दर्शनपरक सत्य और मूल्य प्रदान करता है। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में, 'भारतीयता आध्यात्मिकता के तरंगों से ओत-प्रोत है।' महर्षि अरविन्द ने कहा है कि भारतीयता का प्राण धर्म है, उसकी आस्था धर्म है और इसके मूल्य भी धर्म ही है।

प्रश्न है क्यों और कैसे हो मानव का भारतीयकरण। इसे समझने के लिए हमें इतिहास के

उन पन्नों को पलटने की जरूरत है जिसमें भरी पड़ी है सैकड़ों वर्षों की राजनीतिक परतंत्रता से उत्पन्न अपसंस्कृति और वैचारिक पतन की कहानी। इसमें अंकित है आक्रांताओं के कारण कालांतर में भारतीय संस्कृति का अपसंस्कृतिकरण। भारत में सदियों से विदेशियों का आगमन होता रहा। शक, हूण, कुषाण, अरब, तुर्क, अफगान, मंगोल, मुगल आते रहे। वे कभी व्यापारी के रूप में, कभी धर्म-प्रचारक तो कभी आक्रांता के रूप में आये। उनमें कई समूह तो भारत के सनातनी समाज में घुल मिल गये, कुछ ने भारतीय समाज में शांति और सौहार्द के साथ जीना सीख लिया, तो कुछ ने यहां की संपदा को जी भर कर लूटा और वापस चले गये। कुछ आक्रमणकारी तो यहां लंबे समय तक शासक भी बने रहे। उन आक्रांताओं की संकीर्ण नीति के बावजूद भारतीय समाज का उदार चरित्र कमजोर नहीं हुआ। प्रसिद्ध समाजशास्त्री डॉक्टर श्यामाचरण दुबे ने लिखा है कि भारतीयकरण के लिए आवश्यक है कि हम अपनी जड़ों से जुड़े रहें, हमारी अपनी इतिहास दृष्टि, परंपराबोध, समग्र जीवनदृष्टि तथा विवेकपूर्ण वैज्ञानिक सोच हो। भारतीय सभ्यता में बा' तत्वों को आत्मसात करने की अप्रतिम क्षमता है। भारत की सभ्यता एवं संस्कृति दुनिया की सबसे प्राचीन संस्कृति है। इसके विकास की यात्रा बड़ी लंबी है और अब भी निरंतर जारी है।

भारतीय चिंतन- 'वसुधैव कुटुंबकम्' के मूल आदर्श से कभी विमुख नहीं हुई। भारतीय समाज सर्व समावेशी बना रहा, भारतीय चिंतन में सहिष्णुता और सद्भाव का प्रमुख स्थान बना रहा । सबों को फलने फूलने का अवसर मिलता रहा । भारत की सहिष्णुता का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता कि इस्लाम धर्म के पैगंबर मुहम्मद साहेब के परिवार को भी सुरक्षा और आश्रय यहां के राजा ने ही दिया था।

ईसाई धर्मावलंबियों के लिये प्रथम गिरिजाघर भी केरल के हिन्दू राजा के कारण ही बना और शेरसाह सूरी के हाथों पराजित होकर निर्वसन की जिंदगी में दर-दर भटक रहे मुगल बादशाह हुमायूं की जान एक हिन्दू मल्लाह ने बचाई थी और उनके परिवार को भी अमरकोट के हिन्दू शासक ने ही आश्रय दिया था। ध्यातव्य है कि निर्वसन के दौर में ही अमरकोट के हिन्दू शासक के राजमहल में ही अकबर का जन्म हुआ और सहिष्णुता के माहौल में ही उनका लालन पालन हुआ, जो आगे चलकर उदारवादी नीति पर चलने वाला शासक अकबर के नाम से इतिहास में अपना स्थान बना पाया। भारतीय संस्कारों और सूफी विचारों से प्रभावित होकर ही अकबर ने एक उदार साहिष्णु शासक की तरह अपनी राज्य नीति बनाई थी। आधुनिक काल में औद्योगिक क्रांति से उत्पन्न सामाजिक,आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों ने जिस चिंतन धारा को प्रोत्साहित किया, वह भारत के उदात्त चिंतन, वसुधैव कुटुंबकम् से अलग है। लंबे समय तक परतंत्रता के प्रभाव में भारतीय समाज भी अति भौतिकता की सोच से अछूता नहीं रहा। 1947 में राजनीतिक स्वतंत्रता तो मिली, लेकिन सांस्कृतिक अराजकता बढ़ती गई। शीत युद्ध

> भारतीयकरण के लिए आवश्यक है कि हम अपनी जड़ों से जुड़े रहें, हमारी अपनी इतिहास दृष्टि, परंपराबोध, समग्र जीवनदृष्टि तथा विवेकपूर्ण वैज्ञानिक सोच हो। भारतीय सभ्यता में बा' तत्वों को आत्मसात करने की अप्रतिम क्षमता है। भारत की सभ्यता एवं संस्कृति दुनिया की सबसे प्राचीन संस्कृति है। इसके विकास की यात्रा बड़ी लंबी है और अब भी निरंतर जारी है।

काल में उपभोक्तावाद और वैचारिक संघर्ष तेजी से फैलने लगा। एक ओर पश्चिमी देशों में प्रतिस्पर्धात्मक पूंजीवादी विचार थे तो दूसरी ओर मार्क्स, लेनिन और माओ द्वारा व्याख्यायित साम्यवादी विचार। पूंजीवाद मानव का समग्र विकास नहीं कर सकता। इसका एकमात्र लक्ष्य होता है प्रकृति में उपलब्ध संसाधनों का भरपूर दोहन करके आर्थिक विकास प्राप्त करना। इससे तेजी से समृद्धि तो बढ़ती है, परंतु विकास के इस मॉडल में श्रम से अधिक मशीन की महत्ता होती है, गरीबी और अमीरी के बीच की खाईं बढ़ती है तथा इंसान के इंसान द्वारा शोषण की रफ्तार भी तेज होती है। इससे सामाजिक मूल्यों का क्षरण होता है और बाजार तथा उपभोक्ता की तलाश एवं सृजन के लिए देशों के बीच टकराव भी बढ़ते हैं। दूसरी ओर समाजवादी विचारो में संसाधनों का स्वामित्व राज्य के हाथो सोंप देना ही अंतिम लक्ष्य मान लिया जाता है। भौतिकवाद के सांचे में विकसित पूंजीवादी या समाजवादी मॉडल सार्वभौम नहीं हो सकता। इससे न तो व्यक्ति का समग्र विकास हो सकता और न ही जनकल्याण। उपभोक्तावादी विचारों में व्यक्ति को ही केंद्र में मान लिया जाता है। इससे अधिकतम भौतिक समृद्धि प्राप्त करके सुख पा लेना

आदमी का परम लक्ष्य बन जाता है। परिणामस्वरूप, समाज में संघर्ष और टकराव बढ़ता है, सामाजिक नैतिक मूल्यों में गिरावट आती है, सामाजिक अराजकता बढ़ती है, लोगों के आपसी संबंध मानवीय भावना पर नहीं, भौतिक स्वार्थों पर आधारित हो जाते हैं। भ्रटाचार, काला धन, शोषण, नारी एवं अन्य कमजोर वर्ग के लोगों पर अत्याचार ,व्यभिचार और बलात्कार की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। इन विचारों से अलग हमारी भारतीय वैचारिक परंपरा में मानव विकास को समग्रता में देखा जाता रहा है। बाजारवाद, पूंजीवाद, साम्यवाद जैसी आयातित वैचारिक वादों की काली छाया पड़ने और बाजार को प्रभावित करने वाले भौतिक कारकों के कारण मानव मूल्यों में निरन्तर गिरावट आती रही है। पाश्चात्य मॉडल की शिक्षा और संस्कारों में अनवरत आई गिरावट के कारण आध्यात्मिकता पर आधारित भारतीय संस्कृति में भौतिकता का जरूरत से अधिक महत्व बढ़ने लगा। भारतीय गावों की आत्मनिर्भरता और भारतीयों में स्वावलंबन की भावना खत्म होती गई। मशीनी युग में मानव भी मशीन जैसा ही बनता चला गया। उपभोक्तावादी दौर में हर वस्तु उपभोग योग्य वस्तु और हर व्यक्ति उपभोक्ता बन कर गया। गलाघोंटू प्रतिस्पर्धा की अंधी दौड़ में प्रतिभागी बन कर रह गया है। पाश्चात्य मॉडल की शिक्षा व्यवस्था में आर्थिक विकास के लिए उपयुक्त ज्ञान तो दिए जाते हैं, लेकिन सुंदर सुखद शांत जीवन की कला नहीं सिखाई जाती। भौतिक जगत में सफलता पाने की शिक्षा तो दी जाती है, परंतु मानव को पुरुषार्थ चतुष्टय के सोपान से विलग कर दिया जाता है। मूल्यविहीन शिक्षा और परतंत्रता के भाव से कुत्सित संस्कारों ने हमें राजनीतिक प्राणी तो बना दिया, पर हमें मानव धर्म से अलग कर दिया। हमें अपने अधिकारों के उपभोग करने की शिक्षा तो दी, परंतु हमने अपने नागरिक कर्तव्यों को अपेक्षित महत्व नहीं दिया। आर्थिक क्षेत्र में क्रांति तो हुई, लेकिन सामाजिक-मानवीय मूल्यों में तेजी से गिरावट आ गई। हमारी नैतिकता, आचार-विचार और हमारे सामाजिक व्यवहार एवं सरोकार उपभोक्तावादी सोच के सांचे में ढलने लगे। संयुक्त परिवारों का विखंडन हुआ, बड़े बुजुर्गों के सम्मान में तो कमी आईं ही, इसने नारी के प्रति समाज के दृष्टिकोण को भी प्रदूषित किया है। नारी स्वतंत्रता के नाम पर नारीवादी आन्दोलन हो रहे है, महिलाओं के उत्थान के प्रयास किये गये, इसके लिये एक से बढ़कर एक सरकारी एवं सामाजिक प्रयास किये जाते

रहे हैं। इसके अच्छे परिणाम भी हुए हैं। नारी शिक्षा बढ़ी है, हर क्षेत्र में भारतीय नारी पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने लगी है। लेकिन प्रश्न है कि क्या नारी के प्रति भारतीय समाज का वही नजरिया है, जिसमें नारी को देवी माना जाता है। क्या नारी के प्रति समाज की सोच वही है जिसमें मान्यता थी- 'यत्र नार्यास्तू पूज्यंते, रमंते तत्र देवता।' नारी उत्पीड़न और सामाजिक कुरीतियो के खिलाफ एक से बढ़कर एक कड़े कानून बनाये गये ,फिर भी नारी उत्पीड़न,दहेज ,बलात्कार आदि अमानवीय कुकृत्यों के समाचार देखने सुनने को मिलते रहते हैं।

हमारे संविधान ने सभी नागरिकों को समानता और स्वतंत्रता के मूल अधिकार तो दिये, लेकिन समाज में जाति के नाम पर विद्वेष और टकराव अब भी देखे जा सकते हैं। सदियों से शासित प्रजा को नागरिक बनाने के लिये संविधान ने बिना किसी भेद भाव के प्रत्येक नागरिक को अभिव्यक्ति की आजादी तो दे दी, परन्तु इसका दुरुपयोग करते हुए कुछ लोग देश की एकता और अखंडता को कमजोर करने की हद तक जाने से भी नहीं हिचकते। यदा कदा- 'भारत तेरे टुकड़े होंगे' के नारे लगते हैं, तो कभी राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का अपमान करने से भी कुछ लोग बाज नहीं आते। देश के संवैधानिक संस्थाओं का खुलकर विरोध करने में भी लोग नहीं हिचकते । इससे अंतरराष्ट्रीय जगत में भारत की छवि ही धूमिल नहीं होती, अराजकता बढ़ती है, विकास का मार्ग अवरूद्ध होता है और देश कमजोर होता है। अस्तु, मानव का भारतीयकरण, पश्चिमी सभ्यता संस्कृति के विकसित विचारो से नहीं, भारत की उदात्त संस्कृति का आदर करके और हमारे अपने आदर्शो पर चलकर ही

हो सकता है। भारतीय नागरिक का भारतीयकरण हमारे अपने दर्शन के आधार पर ही हो सकता है जिसमें माना जाता है कि मानव एक व्यक्ति मात्र नहीं है। उसका लक्ष्य भौतिक स्वार्थ सिद्धि तक ही सीमित नहीं है। जीवन यापन के लिये साधन की अनिवार्यता से इनकार नहीं किया जा सकता। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि भौतिक समृद्धि हमारे लिए साधन मात्र है, साध्य नहीं। हमें टुकड़े में विचार नहीं करना चाहिए, बल्कि संपूर्ण जीवन और समस्त सृष्टि का संकलित विचार करना चाहिए। व्यक्ति का हित साधन मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, पर इसीको सब कुछ मान लेने से न तो जनकल्याण हो सकता और न ही सुखद संतुष्ट जीवन का आनन्द लिया जा सकता है। हमारे सभी कर्म धर्म से प्रेरित होने चाहिए और हमारी लाभ की कामना शुभ होनी चाहिए जिसमें हमारा आदर्श- 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, संतु निरामया' ही सर्वोपरि हो। हमारा विकास मॉडल ऐसा हो, जिसमें प्रकृति को संसाधनों का अक्षत भंडार मानकर इसका दोहन ही हमरा लक्ष्य न हो, बल्कि इसके साथ हमारा तादात्म्य बना रहे, हम इसका आदर करें। हमारे सनातन धर्म में प्रकृति के सभी अवयवों के महत्तव को स्वीकार करने के कारण ही तो पृथ्वी, जल, जंगल, पहाड़, पशु पक्षी आदि को आदरणीय माना जाता है।

'जो भरा नहीं है भावों से, जिसमें बहती रसधार नहीं।
हृदय नहीं वह पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।।'

निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि मानव का भारतीयकरण पश्चिम से आयातित नीति या वादों से नहीं, बल्कि भारतीय मनीषियों के उदात्त विचारों पर चलकर ही किया जा सकता है। इसके लिये आवश्यक है भारतीय मूल्यों, संयम, सहिष्णुता, त्याग, सहअस्तित्व, बंधुत्व और स्वदेशी को बढ़ावा दिया जाय । भारतीयता का भाव अध्यात्मिकता से अनुप्राणित हो। यह हमारे लिये एक राजनीतिक विचार ही नहीं, सामाजिक-सांस्कृतिक दर्शन भी है, जो अपनी मातृ भूमि से प्रेम करना सिखाता है और ऐसा कुछ नहीं करना भी सिखाता है जिससे देश का अहित हो। यह हमारे उन आदर्शो पर आधारित है जो बताता है- 'अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम। उदार चारितानांतु वसुधैव कुटुंबकम' और सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे संतु निरामया, सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कष्चित दुःख भाग्भवेत।'

भारतीयता का यह भाव केवल राजनीतिक निष्ठा से ही नहीं, देश की विरासत और संस्कृति के प्रति प्रेम प्रदर्शित करके, राष्ट्रभाषा, राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगान, राष्ट्रीय नैतिकता और मूल्यों का आदर करके ही बढ़ाया जा सकता है। भारतीयता का अर्थ भगवाकरण नहीं होता है। इसका अर्थ है- 'विविधताओं में एकता' के भाव को जागृत करना, जिसमें समस्त सृष्टिमात्र के प्रति कल्याण और सर्वत्र शांति की बात हो। भारतीय संस्कृति वंदन, तर्पण, अर्पण और समर्पण की संस्कृति रही है। यह 'त्येन त्यक्तेन भूंजिताम' के आदर्श विचारों से अनुप्राणित है। इस विचार पर चलकर ही इंसान एन-केन-प्रकारेण धन अर्जित करने की गलत प्रवृत्ति ये दूर रह सकता है। इससे भ्रष्टाचार, कालाबाजारी और काले धन पर भी अंकुश लगेगा और इससे जुड़ी कई गंभीर समस्याओं से भी मुक्ति मिलेगी। इन विचारों के प्रभाव में देश के नागरिक अपने अधिकारों की ही बात नहीं करेंगे, बल्कि अपने नागरिक कर्तव्य के पालन करने में भी आनन्द की अनुभूति करेंगे। भारतीयकरण के लिये आवश्यक है कि स्वदेशी वस्तु एवं चिंतन,सादगी,त्याग और समर्पण ,मानव श्रम,सामाजिक समरसता सुचिता और शांति की बात हो, यह भी जरूरी है। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि भारत की आत्मा की आवाज है- 'सादा जीवन, उच्च विचार।'

(लेखक सेवानिवृत्त विश्वविद्यालय शिक्षक, स्वतंत्र लेखक एवं अध्यक्ष, डेवलपमेंट ऑफ इंडियन सोसाइटी एंड कल्चर (NGO) राजनगर एक्सटेंशन, गाजियाबाद हैं।)

आधुनिक जीवन में रिश्ते : वैदिक विचारधारा के परिपेक्ष में

डॉ. विवेक आर्य

वर्त्तमान समाज में आधुनिकता के नाम पर सांसारिक संसाधनों में आशातीत उन्नति हुई है। इस उन्नति के आवेश में हम आगे बढ़ते जा रहे हैं। मगर इस बीच हम पारिवारिक रिश्तों के सूत्रधारों की अनदेखी कर रहे हैं। बढ़ते तलाक, मन-मुटाव, लड़ाई झगड़ा, कोर्ट केस आदि समाज में गिरावट के बोधक हैं। परिवार में पति-पत्नी, माता-पिता और संतान, भाई-बहन आदि के मध्य सम्बन्ध कैसे हो, जीवन के अत्यंत महत्वपूर्ण इन रिश्तों पर वेदों का मार्गदर्शन हमें मिले तो जीवन वास्तव में स्वर्गमय हो जाये। वेद ईश्वरीय वाणी है। वेदों में सकल मनुष्यों के कल्याण के लिए सन्देश दिया गया है। सामाजिक रिश्तों के लिए वेदों का सन्देश जानिए-

1. वर-वधू को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करते समय वेद कहते हैं-

''गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदृष्टिर्यथासः। भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः।।''-ऋ- 10-95-27

अर्थात विवाह के समय वर वधू को कहता है (सौभगत्वाय) सौभाग्य की वृद्धि के लिये (ते हस्तं) तेरे हाथ को (गृभ्णामि) ग्रहण करता हूं (मया पत्या) मुझ पति के साथ (यथा) जिससे तू (जरदष्टिः) वृद्धावस्थापर्यन्त जीने वाली (असः) हो। (भगः) ऐश्वर्यशाली (अर्यमा) न्यायकारी (सविता) जगदुत्पादक (पुरन्धिः) अत्यन्त बुद्धिवाला परमेश्वर तथा (देवाः) सब ज्ञानी लोग (त्वा) तुझे (मम् अदुः) मेरे प्रति सौंप चुके हैं। तात्पर्य यह है कि वेद के अनुसार गृहस्थाश्रम मनुष्य के सौभाग्य की वृद्धि का एक प्रधान कारण है और पति पत्नी के सम्बन्ध को पाशविक वासनाओं के तृप्त करने का साधन नहीं, अपितु उन दोनों के एक दूसरे की सहायता से उन्नति करने का परमेश्वर प्रेरित साधन समझते हुए व्यवहार करना चाहिये।

2. गृहस्थ आश्रम में पत्नी के कर्तव्य क्या होने चाहिए। वेद कहते हैं-

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती- ऋ 1-3-11

इस मन्त्र में पत्नी का कर्तव्य इस प्रकार से बताया है।-

1. मधुर और सत्य वचन स्वयं बोलना और दूसरों को भी वैसा ही करने की प्रेरणा करना।

2. अपने पति तथा दूसरे लोगों को उत्तम सलाह देना।

3. यज्ञादि का अनुष्ठान करना यह देवियों को धर्म है।

3. वेद पत्नी को पति के उत्तम कार्यों में सहयोगी बनने का सन्देश इस प्रकार से देते हैं-

''आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम्। पत्युरनुव्रता भूत्वा सनक्तस्वामृताय कम।''- अथर्व 14-1-42

अर्थ- हे देवि (सौमनसम्) उत्तम मन (प्रजाम्) उत्तम संतान (सौभाग्यम् रयिम) उत्तम भाग्य ऐश्वर्य इन सबकी (आशासाना) इच्छा करती हुई तू

(पत्युः) पति के (अनुव्रता भूत्वा) अनुकूल शुभ कर्म करने वाली होकर (अमृताय) अमृतत्व की प्राप्ति के लिये (कम्) सुख को (संन'स्व) बांध अथवा सम्पादन कर। अनुव्रता होने का तात्पर्य यह है कि पति का जो अध्यापन, प्रचारादि, परोपकारार्थ उत्तम कर्म है, उसमें सहयोग देना अर्थात् कन्याओं को पढ़ाने और स्त्रियों के अन्दर प्रचार को पूर्ण करने में सहायता देना। यह प्रत्येक पतिव्रता देवी का मुख्य धर्म है। इस धर्म का पालन करने से न केवल इस लोक और परलोक में ही सुख मिलता है, बल्कि पूर्णानन्द रूप मोक्ष की भी प्राप्ति हो सकती है, यह भाव यहां सूचित किया गया है।

4. वेद के अनुसार स्त्री का कर्त्तव्य गृहवासियों को यथायोग्य सुख देना है। इस मन्त्र में देखिये-

''स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः।सयोनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव।।''-अ. 14-2-27

अर्थात् हे देवि (श्वशुरेभ्यः) श्वशुर आदि वृद्ध पुरुषों के लिये (स्योना) सुख देने वाली (भव) हो (पत्ये) पति के लिये और (गृहेभ्यः) घरवालों के लिये (स्योना) सुख देने वाली हो (अस्यै) इस (सर्वस्यै) सारी (विशे) प्रजा के लिये (स्योना) तू सुख देने वाली हो (एषाम्) इन सब पुरुषों की (पुष्टाय) पुष्टि अथवा उन्नति के लिये (स्योना भव) तू सुख देने वाली हो। इस मन्त्र के पूर्वार्ध में अपने घर के सब सम्बन्धियों को सुख देना स्त्री का कर्तव्य बताते हुए उत्तरार्ध में सारी प्रजा का कल्याण करना और पुरुषों को उन्नति में सहायता देना, यह भी देवियों का कर्तव्य बतलाया गया है। वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है और उससे उन लोगों के मत का समर्थन नहीं होता, जो केवल घर का कार्य भली प्रकार करना ही देवियों का धर्म है, घर से बाहर कार्य क्षेत्र में उन्हें उतरने की आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं, क्योंकि बिना सामाजिक अथवा राष्ट्रीय काम किये देवियां कभी सारी प्रजा का कल्याण नहीं कर सकतीं, जैसा कि इस मन्त्र में उन्हें आज्ञा दी गई है।

5. विवाह की अनुमति देकर स्त्री पवित्र यज्ञ करे यह सन्देश वेद इस प्रकार से देते हैं।

''एमं यामनुमतिर्जगाम सु क्षेत्रतायै सुवीरताये सुजातम्।भद्रा 'स्य प्रमतिर्बभूव सेमं यामवतु देव गोपा।।''- अथर्व वेद 7-20-5

कार्य प्रारम्भ करने के लिये पत्नी की अनुमति लेना आवश्यक है, उसे अनुमति नाम से पुकारा गया है। मन्त्र का अर्थ यह है कि (अनुमतिः) इस विवाह यज्ञ को करने के लिये (आजगाम) आई है। यह यज्ञ कैसा है किस उद्देश्य से विवाह यज्ञ रचा गया है, (सुक्षेत्रतायै) उत्तम वीर पुत्रों की उत्पत्ति के लिये (सुजातम्) सुप्रसिद्ध बनाया गया (अस्याः) इस देवी की (प्रमतिः) उत्तम बुद्धि (हि) निश्चय से (भद्रा प्रवभूव) कल्याण कारक है (सा) वह (देव-गोपा) परमात्म देव जिसके रक्षक हैं अथवा देवशुभ गुणों की रक्षा करने वाली यह देवी (इमं यज्ञम्) इस यज्ञ की (अवतु) रक्षा करे। यहां क्षेत्रादि की उपमा देकर विवाह यज्ञ का एक मुख्य प्रयोजन उत्तम वीर सन्तान का उत्पन्न करना है, यह भाव सूचित किया गया है।

6. विवाहित पति पत्नी का परस्पर कितना प्रेम होना चाहिये, इस बात की शिक्षा वेदों में उन दोनों के मुख से जानिए-

''अन्तः कृणुष्व मां हृदि, मन इन्नो सहासति''- अथर्व 7-35-4

तथा-

''ममेदसस्त्वं केवलो नान्यासां कीर्तरूश्चन''- अथर्व 7-38-4

इत्यादि वचन कहला कर दी गई है, जिनका अर्थ यह है कि हे वधू (मां) मुझ को (हृदि अन्तः कृणुष्व) अपने हृदय के अन्दर बैठा ले (नौ) हम दोनों का (मनः इत्) मन तक भी (सह असति) इकट्ठा एक हो जाय। दूसरे में वधू वर को कहती है (त्वं) तू (केवलः) केवल (मम इत्) मेरा ही हो कर (असः) रह (अन्यासाम्) अन्य स्त्रियों की (कीर्तयाः चन न) चर्चा तक न कर। पतिव्रता धर्म ओर पत्नीव्रत धर्म का यह कितना सुन्दर उपदेश है। अथर्व 14-2-64 में पति पत्नी के बीच प्रेम के भाव को स्पष्ट करने के लिये चक्रवाक-चक्रवाकी अथवा चकवा-चकवी की उपमा दी गई है, जो अत्यंत महत्व पूर्ण है। इससे एक पत्नी व्रत का भाव स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि चकवा चकवी का प्रेम और पत्नी-पति व्रत बहुत ही प्रसिद्ध है। मन्त्र इस प्रकार है-

''इहेमाविन्द्र संनुद चक्रवाकेव दम्पती। प्रजयैनो स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम्।।''- अथर्व 14-2-64

7. पुत्र रूपी संतान कैसी होनी चाहिए इस वेद मंत्र में बताया गया है-

'अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः। जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम ।।2।।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा। सम्यंचः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ।।3।।

जिनका तात्पर्य यह है कि (पुत्रः) पुत्र (पितुः) पिता के (अनुव्रतः) अनुकूल कर्म करने वाला हो, (मात्रा) माता के साथ पुत्र (संमनाः) समान मन वाला (भवतु) होवे, (जाया) पत्नी (पत्ये) अपने पति के लिये (शन्तिवाम्) शान्ति देने वाली (मधुमतीं) अत्यन्त मधुर मानो जिसमें शहद लगा हुआ हो ऐसी (वाचं) वाणी को (वदतु) बोले। यहां पहले चरण का आशय विशेष ध्यान में रखने योग्य है, उसका अर्थ यह है कि यदि पिता ने कोई परोपकारार्थ शुभ कर्म प्रारम्भ किया था, तो उसको पूरा करना यह पुत्र का मुख्य कर्तव्य है। व्रत का अर्थ ही शुभ कर्म है, अतः पिता के हरेक काम का पुत्र को अनुसरण करना चाहिये, यह भाव यहां नहीं है, किन्तु अच्छे कामों को पूर्ण करने में सहयोग देने से यहां अर्थ है।

8. विद्वानों का सब प्रकार से सत्कार करना यह सब गृहस्थियों का मुख्य कर्तव्य है। वेदों में इस विषय में विशेष उपदेश है। इस मन्त्र में कहा है-

''मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः।अन्यस्त्वेषां परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तमभि संयन्तु शोकाः।।''-ऋ. 1-125-7

अर्थात् (पृणन्तः) अतिथियों और विद्वानों का अन्नादि से सत्कार करने वाले (दुरितमेन) दुःखमय मार्ग से (मा आरन्) न जाएं, कभी दुःखी न हों। (सुव्रताः) शुभ कर्म करने वाले (सूरयः) विद्वान् (मा जारिषुः) कभी न नष्ट होवें (तेषाम्) उनका (अन्यः कश्चित्) कोई दूसरा (परिधिः अस्तु) धारण करने वाला हो (अपृणन्तम्) अतिथि सत्कारादि न करने वाले कृपणको (शोकाः) शोक (अभि संयन्तु) प्राप्त होवें।

इस लेख में संक्षेप में परिवार के सदस्यों में कैसे सम्बन्ध हो इसका वेदों की शिक्षा के माध्यम से संक्षेप में सन्देश दिया गया है। वेदों की शिक्षाओं के पालन से परिवार में स्वर्ग समान सुख संभव है।

(लेखक आर्य समाज से प्रेरित राष्ट्रवादी लेखन से जुड़े हुए हैं।)

आधुनिक प्रौद्योगिकी क्रांति व सामाजिक जीवन में परिवर्तन

प्रो. विजय कुमार कौल

पृष्ठभूमि

एक राष्ट्र की भौगोलिक व प्राकृतिक संरचना आर्थिक स्थिति राजनैतिक व्यवस्था व संस्कृति मान्यताएं एक समाज का निर्माण करती हैं। प्रौद्योगिकी क्रांति ने इन सभी को प्रभावित किया है। यातायात व संसाधनों की क्रांति ने भूगोल को संकुचित कर दिया, अधिक क्रियाओं ने व्यवस्था को बदल दिया। इसने राजनीतिक सोच व गतिविधियों को प्रभावित किया है। व्यक्ति का जीवन आरामदेह बन गया है, समाज में अधिक संवृद्वि आयी है, कुछ राष्ट्र राजनीतिक व सामरिक दृष्टि से शक्तिशाली बन गये है। परंतु यह भी सत्य है कि काफी मानव समाज व राष्ट्र इसके प्रभाव से अछूते हैं। पुरानी समस्याएं गरीबी, भूखमरी, निखाता, सामाजिक असमानताएं आदि अभी भी विद्यमान हैं। जलवायु परिवर्तन व आधुनिक तकनीकी से नयी समस्याएं भी उत्पन्न हो रही हैं।

यह कह देना उचित होगा कि प्रौद्योगिकी का निर्माण व विकास समाज की आवश्यकताओं को ध्यान रख किया जाना चाहिये। तकनीकी व समाज का संबंध एक तरफा नहीं, बल्कि दोतरफा है। समाज प्रभावित करता है। तकनीकी के विकास व उपभोग को समाज के विभिन्न अंगों को प्रभावित करती है। आज आधुनिक तकनीकी समाधान व समस्या दोनों रुपों में जानी जाती है। इसका ज्वलंत उदाहरण है। वर्तमान में फैली कोरोना वायरस महामारी। जिसने मार्च 2020 से दुनिया के सभी देशों में हहाकार मचा दिया है। कोरोना वायरस महामारी के उद्गम स्थल पर कई प्रश्नचिन्ह है, परंतु अधिकतर विशेषज्ञ इसे चीन की वुहान जैविक लैब में निर्मित बताते हैं। यह जैविक लैब जैविक हथियार बनाने का कार्य कर रही है। यह आधुनिक तकनीक का विनाशकारी उपयोग है, जिसने विश्व में लगभग 2 लाख लोगों को मृत्यु प्रदान की व 20 लाख लोग 28 अप्रैल 2020 यानी आजतक इससे संक्रमित हैं। विश्व में आर्थिक व सामाजिक गतिविधि पूरी तरह से ठप है। दूसरी ओर आधुनिक विज्ञान व तकनीक का उपयोग कर इसका इलाज भी खोजा जा रहा है। समाज में एक दूसरे से संपर्क व स्वास्थ्य सुविधा प्रदान करने के लिये शिक्षा तंत्र को जीवित रखने के लिये आधुनिक तकनीक व संचार व्यवस्था का उपयोग किया जा रहा है। आधुनिक तकनीक का उपयोग कर आरोग्य एप व अन्य अविष्कार भी किये जा रहे है। घर बैठकर कई आर्थिक सेवाओं को भी चालू रखा गया है।

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि आधुनिक तकनीक व प्रोद्योगिकी समस्या भी है और समाधान भी। जहां आधुनिक तकनीक ने समाज में जीवन को आरामदेह बनाने के व्यक्तियों व समाज की सामर्थ्य व क्षमता बढ़ाने में व्यक्ति की व समाज की सुरक्षा बढ़ाने में योगदान दिया है, वहीं इसने समाज में साइबर क्राइम कोरोना वायरस व फेक न्यूज जिससे जनमानस में आपसी वैमनस्यता को बढ़ावा देने का कार्य किया है। इसके दुरुपयोग की असीमित संभावनाएं है। घातक हथियारों व परमाणु ऊर्जा के विनाशक प्रयोग और औद्योगिक गतिविधियों के कारण प्रदूषण की समस्या विकराल रुप ले रही है। आज की इंटरनेट आधारित संचार व्यवस्था व सोशल मीडिया ने समाजिक पहचान समाजिक बुराइयों का फैलाव गलत व असत्य सूचनाओं के आदान प्रदान से सामाजिक आवश्यकताओं को भी जन्म दिया है।

यह सब मन में कई तरह के प्रश्नों को जन्म दे रहे हैं। आधुनिक प्रौद्योगिकी पर प्रश्न चिन्ह भी लगा रहे हैं। क्या वास्तव में आधुनिक प्रौद्योगिकी का विकास व प्रसार मानव के अधिक सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्र को बेहतर बना रहा है। क्या यह भारत वर्ष की उन्नति व समृद्वि में सहायक सिद्व हुआ है। क्या आज की इण्डस्ट्री-4.0 व डिजिटल तकनीक विश्व की समस्याओं को सुलझाने के वरदान साबित होगी? क्या भारत वर्ष इस आधुनिक तकनीक का उपयोग कर अपनी समस्याओं को सुलझाने में व आकांक्षाओं की पूर्ति में सफलता प्राप्त कर पायेगा? इस लेख में इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढ़ने का प्रयत्न किया गया है।

विश्व में ज्ञान विज्ञान व प्रौद्योगिकी का विकास व प्रसारः

मानव एक विचारवान व चिन्तनशील प्राणी है। अपने जीवन यापन सुख सुविधा व सुरक्षा के लिये अनंतकाल से प्रयास करता रहा है। आज मनुष्य के रहन-सहन, शहरीकरण, अत्याधुनिक सुविधाएं व सुरक्षा प्रणाली इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। अपनी चिंतन शक्ति का उपयोग कर मानव ने समाज का गठन व उसको सुरक्षात्मक ढंग से चलाने के प्रयास में कई तरह की समस्याओं और ज्ञान विज्ञान व तकनीक को जन्म दिया है। समस्याएं जो कि औपचारिक व अनौपचारिक नियम कानून राजनैतिक व्यवस्थाएं आदि व्यक्ति के साथ संबंधों को एक दिशा देती हैं, जो कि सभी को मान्य हो और समाज को सुचारू रूप से चलाने में सहायक हों। व्यक्तियों का स्वार्थवश व ईर्ष्यावश दूसरे का अहित करने जैसे प्रकृति को नियंत्रित करने के लिये नियम, कानून व विज्ञान बनाया गया है।

दूसरी ओर व्यक्ति का प्रकृति के साथ संबंध, प्रकृति की शक्तियों को समझकर उसका मानव जाति के लिये उपयोग, इसके लिये ज्ञान विज्ञान व तकनीकी का विकास किया गया है। मानव के इसी प्रयास का परिणाम है कृषि, पशुपालन, ज्योतिष शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र, शास्त्र व शास्त्री का निर्माण। यातायात व संचार प्रणाली का विकास शहरीकरण आदि। यह कार्य सतत चल रहा है। इस प्रयास में पिछले 300 वर्ष में अभूतपूर्व प्रगति हुई है। तकनीकी में हुये इस परिवर्तन को औद्योगिक क्रांति के रूप में जाना जाता है। आज की आधुनिक क्रांति चतुर्थ क्रांति मानी जाती है। प्रथम औद्योगिक क्रांति को स्टीम पावर व स्टीम इंजन के उपयोग से संबंधित आर्थिक क्रियाओं के रूप में जाना जाता है। दूसरी क्रांति में बिजली का उत्पादन व उससे संबंधित बड़े-बड़े उद्योग व इंजीनियरिंग का निर्माण आता है। तीसरी क्रांति माइक्रो इलेक्ट्रानिक व इससे संबंधित तकनीकी आती है। वर्तमान में इंटरनेट आर्टीफिशियल इटेंलिजेस, रोबोट बायोटेक, नैनोटेक, डिजिटल तकनीकी, ब्लाकमेन, क्वांटम, कम्प्यूटरिंग आदि औद्योगिक क्रांति चतुर्थ के रूप में जाने जाते हैं। पिछले 300 वर्ष में हुये इन सभी तकनीकों ने समाज में रहन सहन, आर्थिक क्रियाओं यातायात व संचार के साधनों व राजनीतिक व्यवस्थाओं पर अत्याधुनिक प्रमाणित कर इनके अमूलचूल परिवर्तन ला दिये है।

द्वितीय विश्व युद्व के बाद राष्ट्रों की राजनीतिक आकांक्षा व विश्व शक्ति बनने की इच्छा पूर्ण रूप से विज्ञान व आधुनिक तकनीक पर नियंत्रण के साथ जुड़ी हुई है। आधुनिक तकनीकी के उपयोग व विकास ने विश्व की शक्तिशाली अर्थव्यवस्था को जन्म दिया है। यह आधुनिक तकनीक के उपयोग व नियंत्रण का ही असर है कि ब्रिटेन से विश्व शक्ति का हस्तांतरण अमेरिका को हुआ जो इसकी आर्थिक व सामाजिक शक्ति का प्रतीक है। विश्व में ब्रिटेन जर्मनी, अमेरिका, जापान व वर्तमान में चीन के शक्तिशाली व औद्योगिक शक्ति बनने के पीछे आधुनिक तकनीक का विकास व उपभोग है। द्वितीय विश्व युद्व के बाद विज्ञान व तकनीकी के अनुसंधान व विकास का केंद्रीकरण हुआ है। इससे वैश्वीकरण को भी बढ़ावा मिला है। इस सबने विश्व के विभिन्न देशों में असमानता को भी बढ़ावा दिया है। आज की आधुनिक तकनीकी व विज्ञान एकाधिकारकरण की ओर बढ़ चुकी है। विश्व की अत्याधुनिक तकनीकी को दूसरे राष्ट्रों को हस्तांतरित करने में शक्तिशाली देश सहयोग नहीं करते हैं। वर्तमान में अमेरिका व चीन में व्यापारिक युद्व नयी आधुनिक विज्ञान व तकनीकी पर नियंत्रण करने की लड़ाई है। इसी की परिणीति आज कोरोना वाइरस जैसी जैविक हथियार के रूप में की गई है।

परंतु इसके साथ एक प्रश्न ये भी है कि क्या आज की उपलब्ध व विकसित तकनीकी विकासशील व गरीब देश के लिये आवश्यक/उपयुक्त है? आज की विकसित तकनीकी का उद्गम पश्चिमी देश में 15 वीं शताब्दी के बाद प्लेग जैसी महामारी जो कि ब्लैक डैथ के रूप में जानी जाती है, के बाद हुआ। इस महामारी के कारण यूरोप के विभिन्न राज्यों में एक तबाही से आधी जनसंख्या मृत्यु को प्राप्त हुयी। इस जनसंख्या की कमी को पूरा करने के लिये मशीन का अविष्कार हुआ। इसकी परिणति धीरे-धीरे औद्योगिकी क्रांति के रूप में हुई। आज यह सभी तकनीकी का उपयोग सभी राष्ट्र कर रहे है।

यहां यह जान लेना आवश्यक है कि तकनीकी का विकास व उपयोग समाज की आर्थिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक व राजनीजिक आवश्कताओं के अनुरूप ही होना चाहिये। विकासशील देशों की भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक स्थितियां व समस्याएं विभिन्न है। पश्चिमी देशों की आवश्यकताओं के अनुसार विकसित तकनीकी को विकासशील देशों की परिस्थियों व आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने की आवश्यकता है।

ऐसा करने पर ही यह तकनीकी अधिक उपयोगी सिद्व हो सकती है। अन्यथा इनसे नयी समस्या खड़ी हो सकती हैं। भारत वर्ष में भी ज्ञान विज्ञान व प्रौद्योगिकी का विकास यहां की भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक व्यवस्थाओं व मान्यताओं के अनुसार ही हुआ था।

भारत वर्ष में ज्ञान-विज्ञान व प्रौद्योगिकी का विकास

सिंधु घाटी सभ्यता उन्नतशील व समृद्ध थी। पुरातन काल से ही यह मान्यता रही है कि सभ्यता के विकास का प्रथम आधार ज्ञान विकास है। वैज्ञानिक ज्ञान का व्यवहारिक उपभोग प्रौद्योगिकी है। मानव ने अपने जीवन निर्वाह व भौतिक परिवेश को नियमित करने हेतु उपकरणों के रूप में प्रौद्योगिकी का विकास किया। आवश्यकता आने पर प्रौद्योगिकी ज्ञान विज्ञान को वैज्ञानिक सिद्वांतों के रूप में विकसित किया। इससे प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भावी विकास-सिद्वांतों पर आधारित नवीन प्रयोग से बहुमूल्य सहायता मिली। नवविकसित उपकरणों के विकास ने एक नवीन सामाजिक श्रेणी- शिल्पकार व कामकार, को विकसित किया। उपकरणों ने वैज्ञानिक ज्योतिषि व गणित्यज्ञ, भूगोल का मार्ग प्रशस्त किया।

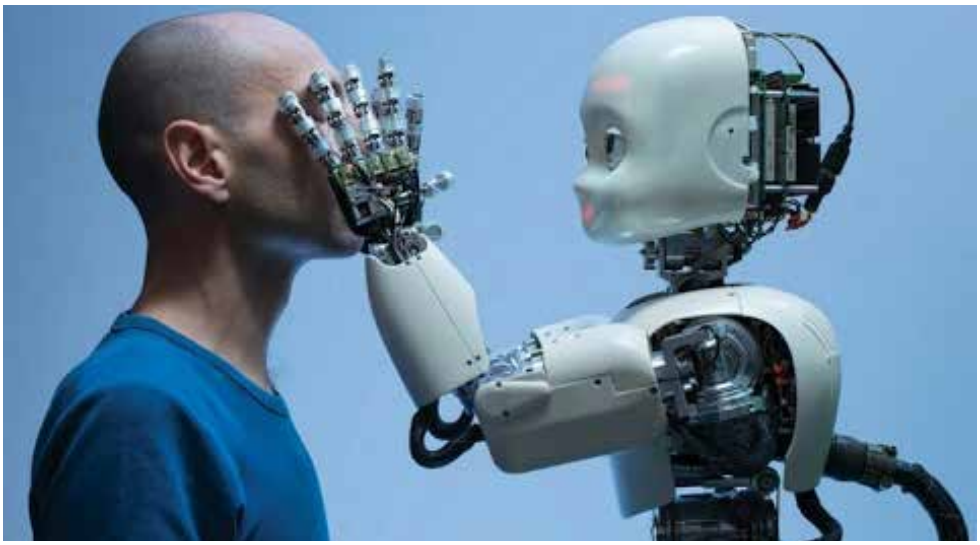

धातुओं के उपयोग, सामाजिक महत्व के रक्षा उपकरणों अलंकरण की वस्तुओं, मुद्रा, दैनिक जीवन में प्रयुक्त उपकरणों एवं स्थापत्यकला के ज्ञान की वृद्वि व उपभोग के साथ-साथ कई तरह के उद्योग विकसित हुये। मुगलों के भारत में आने से पूर्व यानी 1500 शताब्दी से पूर्व तक भारत की अर्थव्यवस्था, व्यापार, व्यवसाय व कर्मकारों का कार्य अच्छी हालत में था। मुगलों के समय में कर्मकारों का धर्मांतरण व शोषण हुआ। 1820 से 1950 के अंग्रेजों के राज्यकाल में भारत की प्रौद्योगिकी व तकनीकी में कोई विकास नहीं होने दिया गया। इससे भारत की विश्व के उत्पादन में हिस्सेदारी में काफी गिरावट आयी। इसका मुख्य कारण भारत का प्रथम औद्योगिक क्रांति में भाग नहीं लेना, अंग्रेजों का शोषणपूर्ण शासन व यातायात व संचार प्रणाली में अभूतपूर्व परिवर्तन है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विज्ञान व प्रौद्योगिकी में प्रगति व विकास के लिये कई प्रयास किये गये। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले पंडित मदन मोहन मालवीय भारत में आधुनिक विज्ञान व तकनीकी व शिक्षा के लिये प्रयत्न शील थे। उनके द्वारा स्थापित बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय व इसकी विषय विवरणी आदि इसका प्रमाण है। महात्मा गांधी जी भी भारत को स्वदेशी सुशासन व सर्वोदय के जन्म के साथ विज्ञान व तकनीकी को विकसित करने पर जोर दिया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश के सभी प्रधानमंत्रियों ने विज्ञान व प्रौद्योगिकी के विकास के लिये कार्य किया। पंडित जवाहर लाल नेहरू के सामने विकल्प थे, (क) नई प्रौद्योगिकी को विदेश से आयात किया जाय, जिसके लिये देश में पूंजी का अभाव था। (ख) वृद्वि आधारित जीवन व आर्थिक व्यवस्था (ग) सार्वजनिक व निजी क्षेत्र में देशी विज्ञान व प्रौद्योगिक का विकास। पंडित नेहरू ने तीसरे विकल्प को चुना और विज्ञान व प्रौद्योगिकी के विकास के लिये आधारभूत संरचना के निर्माण आईआईटी की स्थापना आदि को क्रियान्वित किया। श्रीमती इंदिरा गांधी ने भी विज्ञान व प्रौद्योगिकी का उपयोग क्षेत्रीय विकास व राष्ट्रीय सुरक्षा को ध्यान में रखकर किया। 1980 से निजी क्षेत्र को भी इस दिशा में कार्य करने के लिये प्रेरित किया। इंदिरा गांधी को हौ भारत के परमाणु प्रौद्योगिकी व अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहित करने के लिये जाना जाता है। श्री राजीव गांधी ने कम्प्यूटर को जनमानस तक पहुंचाने का काम जय जवान, जय किसान, जय विज्ञान का नारा भारतवासियों को दिया।

भारत वर्ष की नीति निर्धारण कार्य पद्धति ऐसी है कि अधिक महत्वपूर्ण व निर्णायक निर्णय संकटकालीन परिस्थितियों में ही किये जाते है। वैसे तो भारत में विज्ञान व प्रौद्योगिकी नीति 1958, 1983 और 2003 में बनायी गई, परंतु अधिक महत्वपूर्ण निर्णय संकट की स्थिति में ही लिये गये। जैसे कि खाद्यान्न संकट ने हरित क्रांति व श्वेत क्रांति को जन्म दिया। युद्व की स्थिति व सुरक्षा के कारणवश परमाणु विस्फोट व अंतरिक्ष क्षेत्र में कार्य प्रारंभ हुआ। भारत की एक और विडम्बना है कि हमने अंतरिक्ष के क्षेत्र में चंद्रयान व मंगलयान को अंतरिक्ष में भेजने की क्षमता प्राप्त की। परंतु अपनी औद्योगिकी क्षेत्र में अभी भी हम पश्चिमी देश से प्रौद्योगिकी में पिछड़े हुये हैं।

इस औद्योगिकी व प्रौद्योगिकी के पिछड़ेपन को दूर करने की आवश्यकता है। क्या वर्तमान में उभरती इंडस्ट्री 4.0 व डिजिटल तकनीक के क्षेत्र में हम विश्व में अपना स्थान बना पायेंगे, जिससे समाज व राष्ट्र का कल्याण हो।

आधुनिक प्रौद्योगिकी के लाभ व दुष्परिणाम

आज की डिजिटल क्रांति व इंडट्री 4.0 क्रांति बहुविषयक, बहुमुखी व बहुआयामी क्रांति है, जिसका असर व्यक्ति के जीवन, जीवनयापन, कार्यक्षेत्र व रोजगार, समाज व विश्व राजनीति पर पड़ रहा है। प्रथम औद्योगिक क्रांति स्टील इंजन आधारित थी, जिसने कपड़े उद्योग में मशीन का सर्वप्रथम उपयोग शुरू किया तथा यातायात के साधन में रेलवे कि उपयोग को बढ़ाया। ब्रिटेन के व्यापारियों व नौसैनिकों ने स्टील इंजन का उपयोग समुद्री जहाजों में कर समुद्र पर राज्य किया। व्यापार में प्रगति हुई, वैश्विकरण को बढ़ावा मिला। औद्योगिक निर्माण कार्य में काफी परिवर्तन आया। दूसरी औद्योगिक क्रांति में बिजली के उत्पादन की कई नये उद्योगों व भारी उद्योगों को प्रोत्साहन मिला। जेट इंजन के निर्माण से हुयी यात्रा से आना जाना संभव हुआ। टेलरइजम व फोर्डइजम के संयुक्त उपयोग से मास मैन्युफैक्करिंग का रास्ता खुला। इस सबने मानव की क्षमताओं को बढ़ाया, जिससे वह अधिक कार्य कर सका। इससे विश्व के देशों में दूरी को संकुचित कर कुटुम्बकम बनाने में सहायता की। इस बीच ब्रिटेन व अन्य पश्चिमी देशों ने गरीब व विकासशील देशों का शोषण भी किया।

1960 से 1970 के बीच तृतीय औद्योगिक क्रांति का जन्म माइक्रो इलेक्ट्रनिक्स के रूप में हुआ। इसने कम्प्यूटर को जन्म दिया व इसका विकास आगे आने वाले समय में व्यक्ति की आवश्यकता बन गया। कपड़े धोने की मशीन, टेलीविजन, फ्रिजर आदि ने समाज में गृह कार्य को काफी सुविधाजनक बना दिया। व्यक्ति के कार्यों का आटोमेशन व रोबोट के उपयोग से उद्योगों के उत्पादन में काफी उछाल आया। सूचना व संचार प्रणालियों व प्रौद्योगिकी के उपयोग से समाज के हर क्षेत्र में परिवर्तन होने लगा। क्षेत्र का उपयोग बढ़ता गया। इंटरनेट ने इस समय व्यक्ति व समाज के हर क्षेत्र को प्रभावित किया। ज्ञान विज्ञान को सूचना प्रौद्योगिकी के द्वारा सभी क्षेत्रों में पहुंचाने का कार्य हुआ।

वर्तमान में चतुर्थ औद्योगिक क्रांति पिछली तीनों क्रांतियों पर आधारित है। इसका आधार व विकास डिजिटल प्रौद्योगिक व सिस्टम कें उपयोग पर निर्भर करता है। आटोमेशन रोबोट, आर्टीफिशियल इंटेलिजेंस, डिजिटल नियंत्रण मशीन, आटोनॉमस वेहिकल प्रौद्योगिकी, आटोनॉमस विपेन सिस्टम, अत्याधुनिक सॉफ्टवेयर और सोशल मीडिया क्रांति इसका अंग है। वस्तुओं व सेवाओं के साथ-साथ डिजिटल प्लेटफार्म सामाजिक जीवन के अभिन्न अंग बन गये हैं। सोशल मीडिया से राजनीतिक व सामाजिक जीवन में उथल- पुथल हो रही है। 2011 में अरब स्प्रिंग इसका उदाहरण है। सामाजिक जीवन में आनलाइन दोस्ती व अच्छी धार्मिक व संस्कृतिक विचारों के आदान प्रदान के साथ-साथ फेक न्यूज व सामाजिक वैमनस्यता और अव्यवस्था बढ़ाने के प्रयास भी सतत हो रहे हैं। सूचना क्रांति का असर सोशल मीडिया पर दिखाई दे रहा है। आज मोबाइल, फोन व स्मार्ट फोन ने विश्व में नई क्रांति ला दी है। स्मार्ट फोन से आप अपने आर्थिक व सामाजिक कर्तव्यों का निर्वाह कर सकते है।

कोरोना वायरस महामारी ने इसकी उपयोगिता को और बढ़ा दिया है। आज मोबाइल व इंटरनेट के उपयोग से सूचनाओं व डेटा का भंडार इकट्ठा हो रहा है। इसे बिग डेटा के नाम से जानते हैं। इसका उपयोग कर व्यक्ति व सोसाइटी के विचार, गतिविधियों का ज्ञान एकत्रित किया जा सकता है।

इस सबका दुरूपयोग भी हो रहा है। आज की प्रौद्योगिकी व्यक्ति का स्थान ले रही है। इससे बेरोजगारी की समस्या विकराल रूप धारण कर रही है। आज की प्रौद्योगिकी के उपयोग के लिये आवश्यक क्षमता व कुशलता के लिये स्किल टेकनिक की आवश्यकता है। आज सुरक्षा के अर्थ बदल रहे है। जैसे कि जीवन-यापन की सुरक्षित रोजगार की सुरक्षा, वित्तीय सुरक्षा, राष्ट्रीय सुरक्षा आदि।

चतुर्थ औद्योगिक क्रांति में भाग लेने वाले व्यावसायिक संगठनों का आकार बढ़ता जा रहा है। जैसे कि गूगल, एपल, एमाजान, फेसबुक, अलीबाबा, विन्दुय, हुआर्ड आदि। इस इंटरप्राइज में अमेरिका, चीन की इंटरप्राइज का प्रभुत्व है। यूरोप व कोरिया की भी कुछ कंपनियां इसमें शामिल है। इनके बढ़ते आकार व एकाधिकार की शक्तियों के कारण, इन पर डेटा का शोषण करने व्यक्तियों की निजी सूचनाओं का दुरुपयोग करने का आरोप भी इन पर लग रहा है। यूरोप ने गूगल, माइक्रोसाफ्ट व फेसबुक पर भारी दंड भी लगाया है। इस सबका विश्व की राजनीति पर भी असर पड़ रहा है। दुबई, चीनी कंपनी द्वारा 5जी प्रौद्योगिकी के विकास में एक प्रतियोगिता खड़ी कर दी है। इसने देश को दो भागों में बांट दिया है। चीन द्वारा 2025 तक निश्चित क्रिटिकल प्रौद्योगिकी में अपना प्रभुत्व बढ़ाने की योजना व संकल्प ने इसे अमेरिका के साथ युद्व की स्थिति में खड़ा कर दिया है। पहले तेल पर युद्व हुआ करते थे, अब प्रौद्योगिकी की प्रभुत्व पर युद्व होने वाले है। डिजीटल प्रौद्योगिकी, डिजीटल सिस्टम, डिजीटल क्षमता व डिजीटल योग्यिता आज व्यक्ति व समाज के मापदंड बन गये है। समाज की समस्याओं को दूर करने में इनका उपयोग हो रहा है। वर्तमान आर्थिक राजनीतिक नीतियों में यह एक अभूतपूर्व परिवर्तन का द्योतक है।

आज की प्रौद्योगिकी से सामाजिक परिवर्तन की धारा व मॉडल में बहुत बदलाव आया है। पहले के सिस्टम में प्रौद्योगिकी के आविष्कार से उसका उद्योग में उपयोग निर्मित वस्तुओं व सेवाओं का उपयोग, पुनः इससे आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन और अन्य अन्त में समाज में परिवर्तन। आज पहले जैनेरिक टेक्नालोजी इंटरनेट डिजिटल सिस्टम व आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का उपयोग, सोशल मीडिया में प्रभाव व लोगों द्वारा इसपर चर्चा पुनः इसका औद्योगिक उपयोग और अंत में समाज में परिवर्तन। आज समाज की समस्याओं को सुलझाने के लिये सोशल इनोवेशन, सोशल आंत्रप्रन्योरशिप, सोशल चेंज आदि शब्द आम हो गया है। यह सब समाज में बहुत बड़ा परिवर्तन लाने की क्षमता रखते हैं। परंतु इसके दुष्परिणामों को ध्यान में रखते हुये इसे दिशा-निर्देश देने का कर्तव्य भी विश्व के सभी देशों का है।

भारत की समस्याएं, विकास व समृद्धि की आषंका और आधुनिक प्रौद्योगिकी

70 वर्षों की आजादी व प्रगति के बावजूद भी भारत में कई समस्याएं चली आ रही है। जैसे कि गरीबी, जीवनयापन व रोजगार की समस्या, कम होती गुणवत्ता, बुनियादी सुविधाओं जैसे कि स्वस्थ्य सेवाएं, जल, सड़क, पोर्ट आदि की कमी। इसके साथ-साथ जलवायु परिवर्तन ने नयी समस्याओं को जन्म दिया है। गांव व शहर में बढ़ता अंतर, सामाजिक असमानताओं, पंथ व धार्मिक कट्टरता हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति आदि अन्य समस्याएं भी विद्यमान हैं। इस सबके साथ-साथ देश की युवा शक्ति की बढ़ती आकांक्षाएं व सर्वगीण विकास की आवश्यकता आदि भी देश के नीति निर्धारकों के सामने है। क्या इण्डट्री 40 व डिजिटल प्रौद्योगिकी द्वारा इन समस्याओं का निदान खोजा जा सकता है।

देश में डिजिटल सिस्टिम व प्रौद्योगिकी का प्रयोग व उपयोग काफी प्रगति पर है। निजी क्षेत्र के व्यवसायिक इंटरप्राइज में, सरकारी कामकाज में व जन सुविधाओं को प्रदान करने में इसका उपयोग पिछले एक दशक से अधिक समय से चल रहा है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के कार्यकाल में इसमें तीव्र गति से फैलाव हुआ है। डिजिटल इंडिया, स्किल इंडिया स्टार्टअप आदि के कार्यक्रम बनाये गये। जन सुविधा प्रदान करने वाले कार्यक्रम में जन धन योजना मोबाइल व आधार कार्ड का उपयोग डिजिटल सिस्टम पर निर्भर है। कृषि व ग्रामीण सेवाओं के लिये शुरू किये गये कई कार्यक्रमों का क्रियान्वयन डिजिटल सिस्टम के प्लेटफार्म को उपयोग में लाकर ही किया जा रहा है। डिजिटल प्लेटफार्म सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिये गैस वितरण के नियंत्रण में, मनरेगा, डीबीटी, गांवों में पंजीकरण आदि के क्षेत्र में वर्तमान तकनीकी का प्रयोग हो रहा है। कृषि में सरकार द्वारा ग्रामीण मंडियों को एक दूसरे के साथ जोड़ा जा रहा है। डीबीटी का उपयोग सब्सिडी वितरण के लिये हो रहा है। निजी क्षेत्र भी ई-कामर्स के क्षेत्र में इसका उपयोग कर रहा है। 23 अप्रैल 2020 रिलाइंस कंपनी ने फेसबुक के साथ समझौता करके नयी तकनीकी का उपयोग करने का निर्णय लिया है। इससे वे देश में 3 करोड़ किराना दुकानों को सुविधा प्रदान करने व जोड़ने का कार्यक्रम बना रहे हैं। इसका एक दोष रिलाइंस कंपनी का बढ़ता एकाधिकार भी है।

मुख्य रूप से आधुनिक प्रौद्योगिकी के कृषि उद्योग व सेवा क्षेत्रों में उपयोग से उत्पादन में आर्थिक वृद्वि संभव हुई है व कुशलता बढ़ी है। इससे व्यक्तियों व प्रोफेशन की क्षमता व सामर्थ्य में भी काफी वृद्वि हुई है। व्यवसायिक संगठनों व अन्य संस्थानों के प्रबंधन व नियंत्रण में इसका उपयोग कार्यकुशलता को बढ़ा रहा है। इसका उपयोग देश की सुरक्षा व सामरिक क्षमता बढ़ाने में भी काफी उपयोगी है। आज की डिजिटल प्रौद्योगिकी व सिस्टम उपयोगिता आज के कोरोना वायरस महामारी में स्पष्ट उजागर हुई है। देश की समस्याओं को सुलझाने में सोशल इनोवेशन भी डिजिटल टेकनालाजी से संभव है।

यदि हम कृषि का उदाहरण लें, जैसे कृषकों की आय बढ़ाने के लिये, सरकार ने कई कार्यक्रम बनाये है। इसके तहत कृषि मंडियों को डिजिटल प्लेटफार्म से जोड़ना, जन धन योजना, मोबटेल व आधार कार्ड का उपयोग कर सब्सिडी को कृषकों के खाते में जमा करना आदि है। औद्योगिक तकनीकी का प्रयोग कर भूमि की जांच कर उपयुक्त उपाय सुझाव देना, फसलों का बीमा करना आदि इससे संबंधित है।

डिजिटल इंडिया, स्किल इंडिया, स्टार्टअप इंडिया का उपयोग कर ग्रामीण युवाओं को उद्यमिता की शिक्षा प्रदान कर ग्रामीण विकास के उपाय किये जा रहे हैं। पंचायतों को डिजिटल सिस्टम से जोड़ने के लिये 24 अप्रैल 2020 को प्रधानमंत्री ने ई-ग्राम सेवा पोर्टल का उद्घाटन किया।

उपयुक्त लिखी सभी योजनाओं में आधुनिक प्रौद्योगिकी के उपयोग से समाज को विभिन्न अंग लाभान्वित हो रहे हैं। परंतु साथ ही साथ यह प्रौद्योगिकी नयी चुनौतियां भी लेकर आ रहा है। सबसे बड़ी समस्या रोजगार की बढ़ती समस्या है। कौशलयुक्त श्रमिकों की मांग बढ़ रही है और अकुशल श्रमिकों की मांग कम हो रही है। आधुनिक टेकनालोजी श्रमिकों का स्थान ले रही है। इससे समाज में असंतोष की भावना बढ़ रही है। सामाजिक असमानताओं के ओर बढ़ने की संभावना है।

सोशल मीडिया का उपयोग समाज में जहां एक दूसरे के संपर्क को बढ़ा रहा है, वहीं इसका दुरुपयोग भी बढ़ रहा है। समाज में आपसी भाईचारा पर कुठाराघात भी हो रहा है। फेक न्यूज को बढ़ाकर सामाजिक वैमनस्यता को बढ़ाया जा रहा है। जेहादी उग्रवादी जेहादी उग्रवादी व आतंकवादी इसका दुरूपयोग कर रहे हैं। डिजिटल सिस्टम के बढ़ते उपयोग के साथ ही साथ साइबर क्राइम साइबर अटैक जैसे अपराधों, आतंकवादी गतिविधियों में काफी वृद्वि हुई है। जलवायु परिवर्तन के साथ ई- वेस्ट की समस्या भी बढ़ रही है। डिजिटल डिवाइस की नयी समस्या, वर्तमान असमानताओं की ओर जटिल बना रही है। प्रजातंत्र में प्रतिनिधियों का निर्वाचन बिना किसी हस्तक्षेप व प्रभाव के उनके गुण दोष पर निर्भर करता है। परंतु आज की सोशल मीडिया द्वारा इसको गलत ढंग से प्रभावित करने का उदाहरण अमेरिका में आया है। भारत जो कि विश्व का सबसे बड़ा प्रजातंत्र है, यहां इसके दुरूपयोग की भी काफी संभावनाएं है।

आज जहां प्रौद्योगिकी के द्वारा जन सुविधाओं को जनता के दरवाजे तक पहुंचाने का कार्य हो रहा है, वहीं इसके केंद्रीकरण व.एकाधिकरण

की संभावनाएं भी प्रकट की जा रही हैं। आधुनिक प्रौद्योगिकी का उपयोग जनमानस व समाज की सुविधाओं के लिये हो, व्यक्ति की क्षमता व कुशलता बढ़ाने के लिये हो व देशों की अन्य समस्याओं के समाधान के लिये हो, इसके लिये इसके विकास व प्रसार पर नियम व कानून बनाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष व नीतिगत सुझाव

भारतीय सभ्यता व संस्कृति के मूलाधार स्वावलंबन, परस्पर सहयोग, समन्वय व आध्यात्मिक चिन्तन है। आधुनिक तकनीकी इसमें योगदान कर सकती है। परंतु साथ ही साथ इसके दोषों को दूर रखने के उपाय भी करने की आवश्यकता है। यहां यह बताना आवश्यक है कि समाज के एक बड़े प्रबुद्धवर्ग की मान्यता है कि आधुनिक तकनीक से देश व समाज की सभी समस्याओं का हल निकाला जा सकता है। इस तरह की सोच व धारणा उचित नहीं है। तकनीक एक औजार व साधन है, इसे हमें अपनी आवश्यकता अनुसार विकसित व उपयोग करना चाहिये। हमें आधुनिक तकनीकी कर गुलाम व बंदी नहीं बनना चाहिये।

आज विश्व में उपस्थित कोरोना वायरस की भारी मार हमें यह याद दिला रही है कि वास्तविकता, वस्तुएं आधारभूत सुविधाएं, उचित सामाजिक सोच व सहयोग की भावना आदि उतने ही आवश्यक है, जितने कि आज की डिजिटल व्यवस्था व प्रौद्योगिकी। वास्तविक दुनियां व डिजिटल दुनिया दोनों को साथ-साथ चलना है। जीवन की आधारभूत आवश्यकताएं, खानपान, रहना व पहनना जीवन निर्वाह के लिये अति आवश्यक हैं। वर्तमान प्रौद्योगकी हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता कर सकती है। प्रौद्योगिकी को प्राथमिकता देने वालों को समझना होगा कि मानव चेतना का उपयोग प्रकृति की शक्तियों को समझकर मानव जगत के उपयोग के लिये करने के लिये है। मानव की प्रकृति पर विजय प्राप्त करे के लिये नहीं। यह भावना हमे इसके दुष्परिणाम को कम करने में सहायक सिद्व होगी।

आज की समस्याओं का समाधान मानव व युवाओं की बढ़ती आकांक्षा, देश व राष्ट्र का सवार्गीण व समावेशी विकास की कल्पना आदि की पूर्ति के लिये एक ऐसी प्रौद्योगिकी नीति की आवश्यकता है, जिनमें निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान दिया गया हो।

1. प्रथम हमें अपना लक्ष्य व उद्देश्य निश्चिंत करना चाहिये। हमे वर्तमान समस्याओं के समाधान देश की आकांक्षाओं व राष्ट्र की सामूहिक इच्छा की पूर्ति को ध्यान में रखकर एक सवार्गीण व समावेशी विकास नीति बनानी है और इस नीति में वर्तमान प्रौद्योगिकी का क्या उपयोग है, निश्चित करना पड़ेगा। किस किस कार्य में प्रौद्योगिकी का उपयोग उद्देश्य सिद्धि में सहायक होगा, निश्चित कर कार्यान्वित करना होगा।
2. दूसरा, आज की विश्व भू-राजनीति में आधुनिक प्रौद्योगिकी का उपयोग, कुछ देश अपनी प्रभुसत्ता व शक्ति को बढ़ाकर अन्य देशों को अपने ऊपर निर्भर बनाना चाहते है। अमेरिका, यूरोप के कुछ देश चीन व जापान आदि ही आज की प्रौद्योगिकी में महारत प्राप्त कर सके हैं। भारत, 130 करोड़ जनसंख्या का देश दूसरों पर निर्भर नहीं रह सकता। हमें आज की प्रौद्योगिकी पर समझ व पकड़ बढ़ाते हुये इसमें नवज्ञान, विज्ञान व प्रौद्योगिकी को विकसित करने की आवश्यकता है। वर्तमान प्रौद्योगिकी व ईनोवेशन पर हमारी अपनी प्रभुसत्ता होनी चाहिये। नवज्ञान सृजन के साथ साथ हमें युवाओं में उद्यमिता व नवज्ञान व ईनोवेशन के लिये प्रोत्साहित करना होगा। उन्हें सोशल इन्क्यूबेटर, सोशल उद्यमी बन सोशल इंटरप्राइज का विकास करना होगा।

वर्तमान प्रौद्योगिकी हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता कर सकती है। प्रौद्योगिकी को प्राथमिकता देने वालों को समझना होगा कि मानव चेतना का उपयोग प्रकृति की शक्तियों को समझकर मानव जगत के उपयोग के लिये करने के लिये है। मानव की प्रकृति पर विजय प्राप्त करे के लिये नहीं। यह भावना हमे इसके दुष्परिणाम को कम करने में सहायक सिद्व होगी।

3. तृतीय, हमें अपनी समझ में प्रकृति का सम्मान करते हुये प्राकृति की शक्ति को जनकल्याण के लिये उपयोग करने की प्रवृत्ति बनानी होगी। ईशावास्य उपनिषद में लिखा है कि संसार में जनित सभी वस्तुएं प्रकृति व ईश्वर की देन हैं। इसका उपयोग जनकल्याण के लिये समर्पित होना चाहिये। जलवायु परिवर्तन भी हमें प्रकृति जनित वस्तुओं का उचित उपयोग करने की दिशा में प्रेरित कर रहा है। जल संसाधन प्रणाली, खाद्यान्न प्रणाली व प्रकृतिक संपदा प्रणाली को सतत शख्त, समावेशी तरीके से उपयोग कर ही मानव जीवित रह सकता है। प्रकृतिजन्य अधिकतर वस्तुओं व जैविक विभिन्नता या बायोडायवर्सिटी का प्रतिस्थापन व पुर्निर्माण सम्भव नहीं है।
4. चतुर्थ, उपरोक्त सभी कार्यों के संपादन के लिये एक शिक्षा नीति की आवश्यकता है, जिसमें विद्यार्थियों को, युवाओं को प्रकृति का सम्मान व प्रोद्योगिकी के उचित उपयोग की शिक्षा दी जा सके। प्रकृति की शक्तियों को समझने की क्षमता व उचित उपयोग करने का ज्ञान ही आधुनिक प्रौद्योगिकी के मानव कल्याण के लिये विकसित करने व उपयोग में सहायक होगा।
5. अंत में उपरोक्त दिये गये सभी बिन्दुओं का कार्यान्वयन शासन व शासक की क्षमता व सामर्थ्य पर निर्भर करता है। शासन आधुनिक प्रौद्योगिकी का उपयोग कर अपनी क्षमता बढ़ा सकता है। परंतु उसे जनसाधारण व बुद्धिजीवी वर्ग को साथ लेना होगा। सभी को उचित शिक्षा व स्वतंत्रता प्रदान कर देश व समाज के हित में काम करने को प्रेरित करना होगा। शासन व राज्य को समाज व देश की चेतना को जागृत व प्रेरित करने की क्षमता चाहिये। ■

स्वातंत्र्योत्तर कविता में सांस्कृतिक दृष्टि

प्रोफेसर कुमुद शर्मा
हिंदी विभाग एवं निदेशक हिंदी माध्यम
कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

साहित्य में संस्कृति की अभिव्यंजना के विविध आयाम हैं। हमारी सांस्कृतिक छवियों और प्रतिध्वनियों का इतिहास साहित्य में अंकित है। भारतीय रचनात्मकता के लम्बे इतिहास में विविध भारतीय भाषाओं के साहित्य के बीच एकता के संधान का सूत्र सांस्कृतिक बोध ही है। एक समग्र अखण्डित और सम्पूर्ण चेतना की संवाहिका भारतीय संस्कृति की जीवन धारा समूचे भारतीय साहित्य में समाहित है। इसीलिये विभिन्न प्रांतो और जातियों के वैशिष्ट्य के बावजूद एक केन्द्रीय जीवन दृष्टि के समग्रता बोध ने भारतीयता के स्वरों की संवाद चेतना को निरन्तर जीवंत बनाये रखा । भारतीय रचनाकारों की आत्मसजगता स्मृति और सांस्कृतिक अनुभवों से पुष्ट होती है, जहां परम्परा और स्मृति के असंख्य सूत्र समाविष्ट हैं। इतिहास, मिथक और स्मृति की जमीन पर साहित्य की सर्जनात्मकता अपना वैशिष्ट्य निरुपित करती है।

नये विचारों, नये मूल्यों और नये आंदोलनों के साथ गति पकड़नेवाली स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता सामयिक युगबोध के साथ लम्बे और समृद्ध सांस्कृतिक बोध से भी उद्भासित है। परम्परा का वैशिष्ट्य, सांस्कृतिक गरिमा के व्यापक आयाम और मिथकीय संदर्भों को अपनी रचनात्मक यात्रा में पिरोते हुए कवियों ने अपने समय और परिवेश को उपस्थित किया। अपने -अपने रचनात्मक फलक पर उन स्रोतों की पहचान करायी है, जिनसे भारतीय दृष्टि की अस्मिता निर्मित होती है। संस्कृति के नाभिनाल से जुड़ी उनकी सृजनात्मक संवेदना ने सामयिक संदर्भों में सांस्कृतिक बोध को नई अर्थव्याप्ति दी है। अध्यात्मिक और दार्शनिक संदर्भों से संजीवनी ग्रहण कर सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पन्न कविताएँ रचीं।

आजादी के बाद की कविता जहां नये विचारों, नये आंदोलनों से समृद्ध हुई वहीं वह अपने सांस्कृतिक बोध या सांस्कृतिक दृष्टि के निवेश के कारण भी मूल्यवान बनी। संस्कृति का ठोस स्वरुप कविता में मूल्यों की सृजन प्रक्रिया से सम्बद्ध हुआ। तत्कालीन कवियों ने अमृतलाल नागर की इस स्वीकृति को पुख्ता किया कि 'कल्चर पेट्रोल की तरह जरुरी है, जिसके बिना गाड़ी चल नहीं सकती।' हिन्दी में नवोदय के सूत्रधार अज्ञेय ने कविता के फलक पर संस्कृति के संरक्षण का संकल्प लिया। उनकी आधुनिकता का परम्परा से बैर नहीं है, क्योंकि उनके यहां आधुनिकता सिद्ध स्थिति नहीं वरन् संस्कारवान होने की प्रक्रिया है। आत्मनेपद में वे लिखते हैं- 'मैं लिखता हूँ क्योंकि मेरे पास एक सांस्कृतिक परम्परा है, मेरे पास संवेदना है और बाकी तो शिल्प है। इन बहुसंख्यक लोगों के साथ मेरा सांस्कृतिक परम्परा का साझा है- क्योंकि मैं मूलतः भारतीय हूँ।' (आत्मनेपद पृ. 149)

स्वातंत्र्योत्तर कवि अपनी कविता की रचना प्रक्रिया में परम्परा को स्वीकारता है, लेकिन बौद्धिकता के स्तर पर। अपनी रचनाधर्मिता में वह दोहरे व्यक्तित्व का निर्वाह करता है। एक ओर वह प्राचीन मूल्यों और अतीत की प्रस्थापनाओं में जीवंत और सशक्त यक्षों का समायोजन करता है तो दूसरी ओर वह समसामयिक संदर्भों में नवीन संस्कारों के ग्रहण एवं नवीन जीवन मूल्यों की उद्भावना के प्रति भी सचेष्ट एवं जागरूक है। वस्तुतः आधुनिकता और अत्याधुनिकता के अतिवादी छोरों के बीच भी स्वातंत्र्योत्तर कविता का युगीन चेतना परम्परा विरहित नहीं है। नये

कवियों ने आधुनिक संदर्भों, अनुभवों और विशिष्टताओं को परंपराओं के विवेकपूर्ण समीकरण के साथ चित्रित किया। आधुनिकता और परम्परा के विवेकपूर्ण समीकरण से नयी कविता का उन्मेष हुआ।

परम्परा को स्वीकारते हुए स्वातंत्र्य पूर्व कवियों की भांति सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर कविताएं लिखीं, जिनमें नया अर्थ संदर्भित है। जिस तरह मैथिलीशरण गुप्त ने पौराणिक प्रतीकों और चरित्रों के आधार पर 'जय भारत' की रचना की, उसी प्रकार महाभारत की पृष्ठभूमि पर धर्मवीर

भारती ने 'अंधा युग' लिखा। किंतु अपनी इस रचना में परम्परा को आधुनिकता के साथ जोड़ने के कारण उन्होंने पौराणिक प्रतीकों और चरित्रों को युगीन परिवेश की जटिल संवेदनाओं में संग्रथित किया। कुँवर नारायण की 'आत्मजयी' और दुष्यंत की 'एक कंठ विषपायी' भी इसी श्रेणी की रचनाएं हैं जिनमें परम्परा और आधुनिकता का संश्लेष है।

भारतीय संस्कृति के प्रतीकों का प्रयोग डॉ जगदीश गुप्त ने अपने संग्रह 'हिमविद्ध' की कविताओं मे भरपूर किया है-

'नमन मेरा हिम-जल्द-अभिषिक्त श्रृंगों को
नमन मेरा शांत संध्यातीत रंगों को
इन्द्रधनुष के गुच्छ जिन पर तैरते,
नमन मेरा अलकनंदा की तरंगों को।'

भारतीय संस्कृति की निरन्तर प्रवाहमान धारा नयी कविता में समाहित है। सांस्कृतिक दृष्टि के निवेश की प्रेरणा से ही भवानी प्रसाद मिश्र भारतीय चिन्तन परम्परा का वंदन करते हैं-

'वह धारा अब तक
बरस सहस्त्रों बीत गये
आंखों के आगे आती है
रुप धर नये
कभी शंकराचार्य कभी नानक कभी कबीर
वह आती जाती है हम तक होकर अधीर
वह कभी विवेकानंद कभी है रवि ठाकुर
फिर कभी गूंजने लगती है
बनकर गांधी का गौरव गान'

इस तरह विकास की प्रक्रिया में स्वातंत्र्योत्तर कविता में परम्परा को नकारा नहीं गया। संस्कार देनेवाली परम्परा कविता की अंतर्धारी में मौजूद है। परम्परागत मूल्यों को नवीन परिप्रेक्ष्य में देखा गया है। इसलिए इन कवियों में परम्परा से संघर्ष की प्रवृति दिखायी देती है। उनकी दृष्टि में 'परम्परा कोई ऐसी पोटली बांधकर अलग रखी हुई चीज नहीं जिसे उठाकर सिर पर लाद लें।' वह उसे ठोंक बजाकर देखना चाहता है। जहां सांस्कृतिक आधार को ग्रहण करते हुए नवीन जीवन मूल्यों की ललक भी अपेक्षित है।

मानवीय साक्षात्कार को नये कवियों ने कविता के प्रमुख स्वभाव के रुप में ग्रहण किया। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक संदर्भ में अपने जातीय अनुभव की पहचान पर ध्यान केन्द्रित किया। वरना यहां मानवीय अस्मिता देश की चेतना से समन्वित हुए बिना अपना वास्तविक अर्थ नहीं रखती। स्वातंत्र्योत्तर कविता की भावभूमि में सांस्कृतिक चेतना से समन्वित होकर अभिव्यक्त हुई। सांस्कृतिक बोध व्यापक जीवन बोध के साथ संम्पृक्त होकर व्यक्त हुआ। सामयिक जीवन के साथ उसे नये परिप्रेक्ष्य के साथ जोड़कर अभिव्यक्ति मिली।

स्वातंत्र्योत्तर कवि सामयिक सांस्कृतिक अन्तर्विरोधों और विसंगतियों के कारण जब व्यग्रता और बेचैनी का अनुभव करते हैं तब उसके कई आयाम उभरते हैं। यह व्यग्रता, यह व्याकुलता परिवेश की विशदता में सांस्कृतिक पहचान के अवरुद्ध हो जाने से भी संबद्ध है। सांस्कृतिक वैशिष्टय के खो जाने से है। भारतीय संस्कृति भारतीय समाज के क्रम विकास से जुडी हुई है। ऐतिहासिक दृष्टि से जिस संस्कृति का उद्भव जीवन संघर्ष और सांमजस्य के बीच हुआ वह अपने प्रवाह में सामाजिक, मानवीय और राष्ट्रीय सरोकारों से जुड़कर समृद्ध हुई। सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पन्न कवि ही मानवीय सरोकारों की ऑच में तपकर यह कह सकता है-

'क्या हुआ दुनिया मरकट बनी
अभी मेरी आखिरी आवाज बाकी है
हो चुकी है हैवानियत की इन्तहा
आत्मीयता की अभी आवाज बाकी है।'
(धर्मवीर भारती)

हमारी सांस्कृतिक प्रक्रिया में सामाजिक, राष्ट्रीय और मानवीय सरोकारों की ऐसी उद्भावना रही है जो व्यक्ति को व्यक्ति से, व्यक्ति को लोक से, और व्यक्ति को समष्टि से जोड़ती है। यह पवित्र उद्भावना मनुष्य की अपार क्षमताओं, प्रकृति और परिवेश के साथ उसके गहरे रिश्ते, समाज और मूल्यों के प्रति गहरी जागरुकता से विकसित हुई है। पश्चिमी अवधारणा जहां मनुष्य केन्द्रित है, व्यक्ति केन्द्रित है, जिसमें मनुष्य सृष्टि का सहचर नहीं, वरन् सृष्टि का उपभोक्ता है। भारतीय अवधारणा में मनुष्य असंख्य-असंख्य रिश्तों और सौंदर्य में बँधा सहचर है। जो

कभी प्रेम की उदात्त भावना के सौंदर्य से, तो कभी श्रम के सौंदर्य से, कभी तप के सौंदर्य से अपना परिष्कार करते चलता है। पं विद्यानिवास मिश्र एक जगह लिखते हैं- 'इस देश की संस्कृति सत्ता है, जो धरती से जनक के हल की नोक से पैदा हुई। इस देश की संस्कृति गोविन्द हैं, जिनकी अलकों में गांवों की धूलि समायी हुई है। इस देश की संस्कृति गंगा है, जिन्हें भगीरथ ने अपने परिश्रम से पहाड़ खोदकर निकाला था। इस देश की धरती गौरी हैं, जिन्होंने अपने प्रियतम को सौंदर्य से नहीं तप से प्राप्त किया था। इस देश की संस्कृति इस देश के बाकी असंख्य ग्रामीण बंधु और वनवासी हैं, जो अपनी असंख्य बाधाओं को राम के धनुही से तोड़ने विश्वास रखते हैं।'

भारतीय संस्कृति ने अपने विविध आयामों से जोड़नेवाली भाव सरणियों का वरण किया है। बिखरे हुए सूत्रों को समेटने के लिए अजनबी और बेगाने हो गये लोगों को बांधने के लिए अपनेपन की पुकार लगायी। जीवन से जुड़ने और जोड़ने के लिए आशा, आस्था, सौंदर्य, आकांक्षा, विश्वास, सामंजस्य जैसे मूल्यों को वांछनीय माना। अज्ञेय अपनी एक कविता में संस्कृति की पूरी परिभाषा रच देते हैं। इस परिभाषा में सांस्कृतिक मनोभूमि के प्रति उनकी उनकी मानसिक संपृक्ति के दर्शन होते हैं-

'मैंने धूप से कहा, मुझे थोड़ी गरमाई दोगी उधार?
चिड़िया से कहा, थोड़ी मिठास उधार दोगी?
मैंने घास की पत्ती से पूछा, तनिक हरियाली दोगी-
तिनके की नोक भर ?
शंखपुष्पी से पूछा उदास दोगी-
किरण की ओक-भर?
मैंने हवा से मांगा, थोड़ा खुलेपन बस एक प्रश्वास,
लहर से एक रोम की सिंहासन-भर उल्लास।'

हमारी सांस्कृतिक उद्भावना में 'सत्यमेव जयते' का उद्घोष है। सत्य के अन्वेषण की बात शास्त्रों में ऊँचे स्वर में कही गयी है। 'तारसप्तक' के कवि अपने-अपने तरीके से सत्य के साथ प्रयोग करते हैं। राहों के अन्वेषण की प्रक्रिया में 'वस्तुसत्य' को पहचानने की कोशिश करते हैं। दूसरा सप्तक में आत्मसत्य तक पहुंचने की जिद पालते हैं। संस्कृति की अन्तधार्रा में सत्य का साक्षात्कार, सत्य का आचरण और सत्य के मनन पर बल सत्य को महत्वपूर्ण मूल्य के रुप में स्थापित करता है। संस्कृति की इस अन्तधार्रा को स्वातंत्र्योत्तर कविता आत्मसात किये हुए है। सत्य की उद्घोषणा में विश्वास कुंवर नारायण की कविता में देखा जा सकता है-

'कविता वक्तव्य नहीं गवाह है
कभी हमारे सामने
कभी हमसे पहले
कभी हमारे बाद
कोई चाहे भी तो रोक नहीं सकता
भाषा में उसका बयान
जिसका पूरा मतलब है सच्चाई
जिसकी पूरी कोशिश है बेहतर इन्सान
उसे कोई हड़बड़ी नहीं
कि वह इश्तहारों की तरह चिपके
जुलूसों की तरह लगे
और चुनावों की तरह जीते
वह आदमी की भाषा में
कहीं किसी तरह जिंदा रहे बस'

नयी कविता में सत्य का साक्षात्कार कराती कविता है। कवियों ने गहन और विस्तृत परिवेश में जीवन का सत्य रोपा है। राष्ट्रीय सरोकारों और मानवीय सरोकारों से जुड़कर सत्य का संधान करनेवाली कविताएं 'भाषा में आदमी होने की तमीज' की आकांक्षा से जुड़ती हैं।

भारतीय संस्कृति में आधुनिक मूल्यों की पृष्ठभूमि विधमान है। विश्वफलक पर आज मानवाधिकारों की रक्षा का प्रश्न महत्वपूर्ण प्रश्न है। मानवाधिकारों की चेतना के बीज भारतीय चिंतनधारा में विद्यमान 'स्वत्व' शब्द में मिलते हैं। इसका अर्थ ग्रहण किया गया है कि जो तुम्हारा देय या तुम्हारा प्राप्य है अर्थात वही तुम्हारा प्रदेय है। मानवाधिकार की यह परिकल्पना असाधारण है। ■

संस्कारित समाज निर्माण में संतों की भूमिका

संजय राय
वरिष्ठ पत्रकार

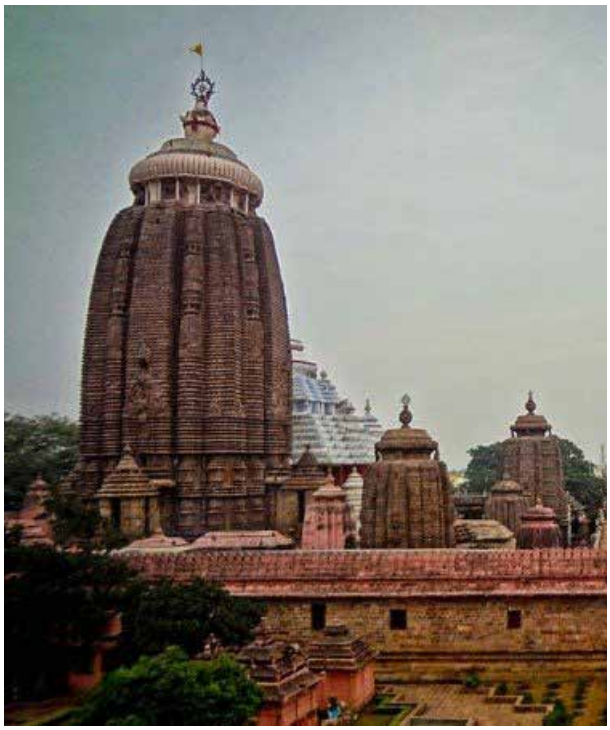

आज पूरा विश्व वैश्विक महामारी कोरोना के संकट से जूझ रहा है। पड़ोसी देश चीन के वुहान शहर से फैले इस विषाणु ने समूची मानवता को खतरे में डाल दिया है। भारत भी इससे अछूता नहीं बचा है। कोरोना ने हम सबको लंबे समय तक अपने घरों में दुबकने को मजबूर किया है, जो कि मानव स्वभाव और विशेष रूप से भारतीय समाज के स्वभाव से बिलकुल विपरीत है। अब धीरे-धीरे इस संकट के बीच हम एक बार फिर से अपने घरों के बाहर निकलने लगे हैं और पटरी से उतर चुकी आर्थिक गतिविधियों को नये सिरे से आगे बढ़ाने का प्रयास शुरू हो चुका है।

संकट के समय जरूरतमंद लोगों को समाज के हर वर्ग से मदद की गई। इस काम में धार्मिक और सामाजिक संगठनों ने भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। एक दूसरे को सहयोग करने का यह मूल्य अनादिकाल से हमारे समाज में पुष्पित पल्लवित हुआ है और संत समाज ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। समाज में भटके हुये लोगों को सही रास्ता दिखाने का काम संतों का है। सामाजिक विकृतियों और कुरीतियों को समाप्त करने में संतों की भूमिका उल्लेखनीय रही है। जब-जब समाज में कुरीतियां बढ़ी हैं, आपसी वैमनस्य बढ़ा है, सनातन मूल्यों पर खतरा मंडराया है, संत समाज इनके समाधान के लिये आगे आया है।

जब हम अपने इतिहास पर नजर डालते हैं तो समूचे भारत वर्ष में ऐसे हजारों संत मिल जायेंगे, जिन्होंने अपने व्यवहार, स्वभाव, कर्म और अपनी वाणी से समाज को सही दिशा दिखायी है। लगभग 500 साल पहले जब भारतीय समाज में मूल्यों का क्षरण हो गया था, देश पर मुगलों की सत्ता मनमाने तरीके से सनातन मूल्यों एवं परंपराओं को तहस-नहस करने में जुटी हुयी थी, समाज का आत्मबल समाप्त होने के कगार पर पहुंच गया था, ऐसे में सूरदास, तुलसीदास, कबीरदास और मीराबाई जैसे संतों ने भक्ति आंदोलन के माध्यम से समाज में पुनर्जागरण की बयार बहाने का काम किया।

विचारणीय तथ्य यह है कि इन संतों ने समाज को सही दिशा देने के लिये आपस में न तो कभी कोई बैठक की और न ही उस समय इनके पास संचार का ऐसा कोई माध्यम था, जिसके सहारे आज के समाज की तरह ये लोग आपस में विचार विमर्श करते। इन संतों द्वारा बहायी गई पुनर्जागरण की यह बयार आज भी समाज को मनोमस्तिष्क पर अपना सकारात्मक असर डाल रही है।

सनातन धर्म के महान दार्शनिक आदि गुरु शंकराचार्य ने हिन्दू समाज को पुनप्रतिष्ठित करने के लिये जो काम किया है, उसे आज भी देखा जा सकता है। दक्षिण भारत के केरल में जन्मे शंकराचार्य ने समूचे भारत वर्ष का भ्रमण करके, विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ करके, विभिन्न धार्मिक ग्रंथों पर टीकाओं का लेखन करके सनातन धर्म की विभिन्न विचारधाराओं को एक सूत्र में पिरोने का काम किया। उन्होंने चार पीठों की स्थापना की और सनातन धर्म की पताका को एक बार फिर से प्रतिष्ठा दिलायी। उनके द्वारा स्थापित बद्रिकाश्रम का ज्योतिषपीठ, द्वारिका का शारदापीठ, पुरी का गोवर्धनपीठ और कर्नाटक के चिकमंगलूर का श्रृंगेरीपीठ हिन्दू धर्म के श्रद्धालुओं का पवित्र तीर्थ है। भारतवर्ष की चारों दिशाओं में स्थापित ये पीठ राष्ट्रीय एकता और अखंडता के प्रतीक बने हुये हैं।

संतों और मठों ने समाज को सही दिशा दिखाने में सदैव अपनी भूमिका निभायी है। भारतीय समाज में यह परंपरा अनादिकाल से चली

आ रही है। हमने विश्व को अपने मूल्यों और विचारों से प्रभावित किया है। इसे भारत की विदेश नीति में 'सॉफ्ट पॉवर' के नाम से जाना जाता है। सिर्फ भारत ही नहीं, बल्कि अड़ोस-पड़ोस के सभी राष्ट्रों के समाज इन्हीं विचारों एवं मूल्यों के आधार पर बने हैं। श्रीलंका, भूटान, तिब्बत, चीन, मंगोलिया, मध्य और पश्चिम एशिया के सभी राष्ट्र हमारे संतो के विचारों को ग्रहण करके आगे बढ़े हैं।

विश्व कल्याण की कामना से आप्त संत समाज ने इन राष्ट्रों में अपनी जो छाप छोड़ी है, उसके भौतिक अवशेष अभी भी देखे जा सकते हैं। उजबेकिस्तान के बाकू प्रांत के सुराखानी शहर में बड़ी ज्वाला माई का मंदिर विश्व धरोहर के रूप में आज भी मौजूद है। पश्चिम के विद्वानों ने इस मंदिर पर काफी शोध किया है। उनके मुताबिक यह मंदिर हिन्दू और पारसी धमार्नुयायियों का पवित्र तीर्थस्थल था। हिन्दू इसे बड़ी ज्वालामाई के रूप में पूजते थे, तो पारसी इसे आतिशगाह के रूप में पूजा करते थे। वियतनाम के दक्षिणी हिस्से में कभी चम्पा नाम का एक राष्ट्र था। यहां पर शैव मंदिरों के अवशेष गवाही देते हैं कि भारत के संतों ने इस भूमि पर भी सनातन की अलख जगायी थी। पश्चिम एशिया का शायद ही कोई ऐसा राष्ट्र हो जहां सनातन धर्म ने अपनी छाप नहीं छोड़ी हो। लेकिन यह बेहद दुख का विषय है कि आज की पीढ़ी सनातन की इस शौर्य गाथा से पूरी तरह अनजान है। इस बारे में जानकारी देने का काम क्या संत समाज को नहीं करना चाहिये? संत समाज को इस पर भी शोध करना चाहिये कि आखिर वे कौन से कारण रहे कि इन स्थलों से हिन्दू समाज का नामोनिशान गायब हो गया।

इतना ही नहीं अरब राष्ट्रों में भी हजारों वर्ष तक संतों के माध्यम से सनातन संस्कृति जीवित रही है। मुसलमानों का पवित्र स्थल मक्का भी इस्लाम के पहले प्रसिद्ध मंदिर था। इस मंदिर में एक शिवलिंग और 360 मूर्तियां थीं। इस्लाम के प्रवर्तक पैगम्बर मोहम्मद साहब के सगे चाचा इस मंदिर के प्रमुख कत्र्ताधत्र्ता थे। इस्लाम आने के बाद मंदिर की मूर्तियों को तोड़ दिया गया, लेकिन निराकार के रूप में स्थापित उस पत्थर को छोड़ दिया गया, जिसे आज भी हज करने वाला हर मुसलमान चूमता है और आशीर्वाद प्राप्त करता है। मक्का मंदिर में परिक्रमा की परंपरा आज भी जारी है। देश की राजधानी दिल्ली स्थित बिरला मंदिर में देखा जा सकता है कि किस तरह से अरब में भगवान शिव के उपासक उनकी अराधना किया करते थे। मंदिर के अंदर स्थित मंडप की दीवारों पर कवियों के नाम के साथ अरबी भाषा में ऐसी कई आयतें लिखी हुई हैं, जिनमें बार-बार महादेव भगवान शिव का नाम आता है। इन प्रमाणों के बारे में हमारे देश के कितने संतों को जानकारी है। संत समाज की भूमिका पिछले कई वर्षों से सवालों के घेरे में है। हिन्दू धर्म के लोग यह सवाल कम उठाते हैं, जबकि अन्य धर्म के लोग हमारे मंदिरों और मठों से होने वाली आय पर बुरी नजर गड़ाये हुये हैं। इनका वश चले तो मंदिरों की आय को ये सरकार के कब्जे में देकर उससे अपने धर्म का प्रचार-प्रसार करने लगेंगे। कई मंदिरों की आय सरकार के कब्जे में चली गयी है। आखिर ऐसा क्यों हुआ? कहीं न कहीं कोई कमी तो रही होगी। संत समाज को एकजुट होकर इन खामियों का निवारण करने का उपक्रम आरंभ करना होगा।

अगर यह कहा जाय कि दुनिया के समस्त धर्मों का मूल सनातन है तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। शिव पूजा की परंपरा में त्रयोदशी (प्रदोष) का बड़ा महत्व है। सनातन के कई जानकारों का दावा है कि प्राचीन काल में त्रयोदश ज्योतिर्लिंग को लोग पूजा करते थे, जिसमें मक्का मंदिर का यह पत्थर भी शामिल था। यह शोध का विषय है कि हमारे समाज में कब से द्वादश ज्योतिर्लिंग पूजने की परंपरा शुरू हुई। अगर यह सच है तो इस काम को संत समाज ही कर सकता है, सरकार नहीं। अगर संत समाज पहल करे और उसके पास इसका कोई प्रमाण हो तो नये सिरे से शोध किया जा सकता है। इस शोध में तुर्की का राष्ट्रीय संग्रहालय

महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है, क्योंकि इस संग्रहालय में अरब देशों के कई कवियों और लेखकों के साहित्य उपलब्ध हैं, जिनमें शिव की प्रशंसा में कहानी और कविताएं लिखी गयी हैं।

आज जब हम अपने धार्मिक स्थलों पर नजर डालते हैं तो निराशा का भाव पैदा होता है। इन स्थलों पर जाने वाले श्रद्धालुओं और पर्यटकों को भारतीय संस्कृति एवं संस्कार के बारे में जानकारी देने की कोई व्यवस्था नहीं है। क्या संत समाज इस दिशा में अभी से कोई पहल नहीं कर सकता है? ऐसी व्यवस्था को बनायी ही जा सकती है कि इन स्थलों पर जाने वाले लोगों को धर्म के महत्व के बारे में जानकारी देने के बाद ही प्रसाद दिया जाय।

पिछले 1000 साल का इतिहास देखें तो भारतवर्ष में सनातन धर्म के अनुयायियों की संख्या लगातार कम हो रही है। यह हमारे वर्तमान संत समाज के लिये गहरी चिंता का विषय होना चाहिये। पिछले 10 वर्षों में ही सनातन धर्म के अनुयायियों की आबादी अन्य धर्मावलंबियों की तुलना में लगभग 6 प्रतिशत कम हो गई है। क्या यह हम सबके लिये चिंता का विषय नहीं होना चाहिये? इसके कारणों को समझना एवं इसका उचित निदान अत्यंत आवश्यक है।

सनातनधर्मियों की आबादी में आयी इस बेतहाशा गिरावट का सबसे प्रमुख कारण उनमें अपने धर्म के प्रति अज्ञानता एवं शिथिलता है। जिसका लाभ उठाते हुए अन्य कट्टरपंथी मजहबों जैसे इस्लाम और ईसाई, ने सनातनी अनुयायियों का धर्मांतरण तलवार एवं धन के बल पर कराया। इसके विपरीत सनातन धर्म सहिष्णु विचारधारा में आस्था रखता है और दूसरे मजहब के लोगों को सनातन धर्म में जोर जबस्ती से लाने का प्रबल विरोधी है। इसका फायदा दूसरे मजहब के कट्टरपंथियों ने उठाया है। मुस्लिम एवं ईसाई मजहब के गुरु अपने अनुयायियों को निरंतर निश्चित अंतराल पर शिक्षित एवं मजहब के प्रति पूरी आस्था रखने के लिए प्रेरित करते रहते हैं।

बदले हुये इस सामाजिक परिवेश में सनातन धर्म के धार्मिक गुरुओं को भी अपने अनुयायियों को इसी तरह से शिक्षित एवं प्रेरित करना होगा। सनातन धर्म के अनुयायी भी निरंतर निश्चित अंतराल पर अपने धार्मिक स्थलों पर जाते हैं। लाखों करोड़ों लोग सनातन धर्म के चारों धामों बद्रीनाथ, द्वारका, जगन्नाथपुरी और रामेश्वरम का दर्शन करने जाते हैं। ऐसे ही अनेकों पवित्र धार्मिक स्थल जैसे अयोध्या, उज्जैन, मां वैष्णो देवी, तिरूपति बालाजी, मथुरा, वृंदावन, काशी, हरिद्वार इत्यादि हैं। गांव शहरों में बने मंदिरों में भी करोड़ों सनातनी रोजाना जाते हैं। इन धार्मिक स्थलों पर हमारे धार्मिक गुरुओं को इन अनुयायियों में अपने धर्म के प्रति पूर्ण आस्था जागृत करने के लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिये। यह आज के समय की जरूरत है।

वैसे तो हर सनातनी में अपने धर्म का भाव परिवार एवं समाज से भी आता है, लेकिन धार्मिक गुरुओं द्वारा शिक्षित करने से उसे और पक्का एवं मजबूत बनाया जा सकेगा। तभी सनातन धर्म को संकुचित होने से रोका जा सकेगा और यह बहुत जरूरी है। न केवल भारत के लिए वरन पूरे विश्व के लिए, क्योंकि सनातन धर्म ही पूरे विश्व में शांति, विकास

और वैभव का संदेश देने की क्षमता रखता है। यह काम इसलिये भी जरूरी है, क्योंकि मुखर हिन्दू ही भारतवर्ष को प्रखर राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठा दिला सकता है। ऐसा करके हम राष्ट्रीय एकता और अखंडता को पुष्ट कर सकते हैं और आने वाली पीढ़ी के अंदर सनातन मूल्यों के प्रति गर्व का भाव पैदा कर सकते हैं।

हम बात कर रहे हैं सनातन धर्म के प्रचार-प्रसार में संत समाज की भूमिका की। आज जब पूरे विश्व में कोरोना, भूकंप, टिड्डी, बाढ़, सूखा, अतिवृष्टि और युद्ध जैसी समस्याओं का प्रकोप दिख रहा है, मानवता त्राहि-त्राहि कर रही है, ऐसे में संतों की भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी है। एक बार फिर से उन्हें अपने अतीत का स्मरण करके समाज के वर्तमान को सुधारने के लिये आगे आना होगा। आज हमारे पास विश्व से संपर्क करने के लिये अत्याधुनिक तकनीकी साधन मौजूद हैं। संत समाज इसके सहारे सनातन मूल्यों को विश्व में प्रचारित-प्रसारित कर रहा है। यह अच्छी बात है। संत समाज को वर्तमान अभूतपूर्व परिस्थितियों में अभिनव पहल करने की जरूरत है, जिससे कि हमारी युवा पीढ़ी सनातन मूल्यों के प्रति गर्व महसूस कर सके और इन मूल्यों को समूचे विश्व में पूरे उत्साह के साथ पुनर्प्रतिष्ठित करके यह बता सके कि जीवन जीने का एक मात्र रास्ता सनातन है, क्योंकि यह चिरपुरातन और नित्य नूतन है। ■

हमारे संस्कार

व्यक्तिगत स्तर

- सूर्योदय से पहले उठना तथा माता-पिता, गुरु, इष्टदेव को मानसिक प्रणाम कर दिनचर्या आरंभ करना।
- स्नान के बाद प्रतिदिन सूर्य भगवान को जल चढ़ाकर प्रार्थना करना।
- सार्वजनिक स्थानों, घर व व्यक्तिगत साफ-सफाई पर विशेष ध्यान देना।
- प्रतिदिन व्यायाम व शारीरिक श्रम अवश्य करना तथा शरीर की आवश्यकतानुसार सात्विक आहार ग्रहण करना।
- नशीले पदार्थों के सेवन से पूरी तरह बचना तथा कुसंगति से दूर रहने का हर संभव प्रयास करना।
- किसी काम को छोटा या हीन न समझना तथा अपना नियत कार्य निष्ठा एवं श्रद्धापूर्वक करना।
- सबमें परमात्मा का अंश है, अतः किसी भी मनुष्य को छोटा या हीन न समझना।
- सादगी, मितव्ययिता एवं संयमित जीवन जीने का प्रयास करना तथा पड़ोसियों के सुख-दुख में भाग लेना।
- सद्विचार, सद्वचन एवं सत्कर्म को सम्मान देना तथा सत्य के समर्थन में कष्ट सहने के लिये तैयार रहना। न तो दूसरों की आस्था तोड़ना और न ही अपनी आस्था टूटने देना चाहिये।
- वृद्धों के प्रति श्रद्धा एवं सम्मान का भाव, साथियों के प्रति प्रेम व सहयोग तथा छोटों के प्रति स्नेह का भाव रखना।
- अपने सुख या लाभ के लिये दूसरों को कष्ट या हानि न पहुंचाना। झूठ या निन्दा से बचने का पूर्ण प्रयास करते हुये अनुचित तरीके से धन अर्जन से स्वयं को दूर रखना।
- अपनी आय का दसवां हिस्सा समाज कल्याण के लिये देना तथा दैनिक जीवन में रोजाना दो घंटे का समय शुद्ध रूप से सामाजिक कार्य के लिये समर्पित करना।
- विरोधी विचारों पर शांतिभाव से गहराई से विश्लेषण करके उचित निष्कर्ष पर पहुंचना।
- स्वाध्याय एवं भगवद्-चिन्तन के लिये थोड़ा समय निकालना तथा सोने से पहले आत्म-विश्लेषण करना और अपने सम्पूर्ण कर्मों को प्रभु के चरणों में अर्पित करना।

परिवारिक स्तर

- परिवार के सभी सदस्य कम से कम एक समय का भोजन अवश्य साथ करें तथा पन्द्रह दिन में कम से कम एक दिन परिवार के सभी सदस्य साथ बिताएं।
- परिवार में संस्कारमय वातावरण बनाएं। जैसे-बड़ों का पैर छूना, दीया-बाती एवं आरती करना, तुलसी एवं सूर्य भगवान को जल चढ़ाना इत्यादि बातें बच्चों को सिखाना।
- घर की सजावट, संस्कारयुक्त पुस्तकें एवं भजन, सद्गुरुओं की वाणी व प्रवचनों को पेन-ड्राइव, यू-ट्यूब व अन्य माध्यमों से देखना/सुनना व परिवार के सदस्यों को दिखाना जिससे सद्विचार उत्पन्न हों।
- भोजन में पक्षियों एवं गौमाता का हिस्सा निकालना एवं छोटे-छोटे कार्यों से बच्चों में परोपकार की प्रवृति जागृत करना।
- बच्चों में बचत की भावना को प्रोत्साहित करने के लिये उनको गुल्लक देना।
- अपने उपयोग किये हुये अखबारों, कबाड़ एवं अन्य वस्तुओं को बेचने की बजाय परोपकारी कार्यों के लिये दे देना।
- रिश्ते-नाते निभाना एवं उसके दायित्व के प्रति ईमानदारी बरतना।
- सफाई के साथ-साथ पर्यावरण एवं जल संरक्षण पर ध्यान देना।

सामाजिक स्तर

- सार्वजनिक जीवन में शारीरिक श्रम करने वालों को सम्मान देना तथा उचित अनुकरणीय उदाहरणों सामने लाना।

- सफाई, श्रम, सेवा, संयम एवं त्याग के पक्ष में वातावरण बनाना।
- सत्य के समर्थन में समाज को एकत्रित करना एवं इस व्यवस्था के अनुकूल गतिविधियों एवं उपक्रमों को प्रोत्साहन देना।
- सार्वजनिक कार्यों में वैभव-विलास की बजाय मितव्ययिता को प्रदर्शित एवं प्रोत्साहित करना।
- जीवन शुचिता एवं साधन शुचिता को अच्छाई और सामाजिक प्रतिष्ठा का मापदंड बनाना।
- विवाह-आयोजन एवं मृत्यु-भोज आदि अवसरों पर फिजूलखर्ची से बचना।
- अपने गांव/क्षेत्र के पूजास्थलों पर अन्नशाला, गौशाला,

पाठशाला, धर्मशाला तथा आरोग्यशाला स्थापित करना।

- प्राकृतिक संसाधनों जैसे जल/जलस्रोत, जंगल/वृक्षभूमि, जमीन, जानवर आदि के संरक्षण एवं संवर्धन के कार्य को आगे बढ़ाना।
- सफाई जैसे कार्यों में सामूहिक श्रमदान के माध्यम से सामाजिक सहभागिता को बढ़ाना।
- नशा उत्पादन एवं नशा बिक्री केंद्रों को अपने क्षेत्र में न पनपने देना तथा पहले से खुले नशा केंद्रों के खिलाफ लोगों के साथ मिलकर जन आंदोलन कर उनको बंद करवाने का प्रयास करना।
- गांव तथा बस्ती में लोक संस्कार तथा लोक शिक्षण की दृष्टि से वाचनालय/पुस्तकालय स्थापित करना तथा अपने गांव या बस्ती की चैपाल को पुनर्जीवित करना।
- कस्बों, शहरों और महानगरों के विद्यालयों व महाविद्यालयों में विद्यार्थियों को भारतीय मूल्यों, परंपराओं, सभ्यता, संस्कृति, संस्कारों एवं इतिहास के प्रति संवेदनशील एवं जागरूक बनाना।

शारीरिक व मानसिक विकृति निवारण हेतु सनातन धर्म के मंत्र

गायत्री मंत्र

'ऊं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।'

महामृत्युंजय मंत्र

ॐ त्रयम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उवार्रुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।।

कल्याण मंत्र

ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भ्रदाणि पश्यन्तु, मा कश्चित्
दुःखभाग्भवेत्॥

आरोग्य मंत्र

श्रद्धां मेधां यशः प्रज्ञां, विद्यां पुष्टिं श्रियं बलम् ।
तेज आयुष्यमारोग्यं, देहि मे हव्यवाहन॥

विश्व कल्याण मंत्र

अयं निजः परो वेति गणना लघु चेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।
ॐ स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां, न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं, लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु॥

पवमान मंत्र

ॐ असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योमार्मृतं गमय।

शत्रुनाश मंत्र

रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।

गणपति मंत्र

ॐ गं गणपतये नमः

धन प्राप्ति मंत्र

ॐ ह्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै नमः

UFLEX

'A part of your daily life'

UFLEX ENSURING REGULAR SUPPLY OF DAILY ESSENTIALS IN TOUGH TIMES

India's Largest Multinational Flexible Packaging Materials & Solutions Company and a Global Player in Polymer Sciences

Packaging Films | Flexible Packaging | Aseptic Liquid Packaging | Chemicals | Engineering | Cylinders | Holography

Manufacturing facilities at India | UAE | Poland | Egypt | Mexico | USA

Visit us at: www.uflexltd.com | **Mail us at:** enquiry@uflexltd.com | **Follow us at:**

HAR KAAM DESH KE NAAM

इंडियनऑयल
IndianOil

60 YEARS of serving India

WE HAVE A BILLION PLUS

1

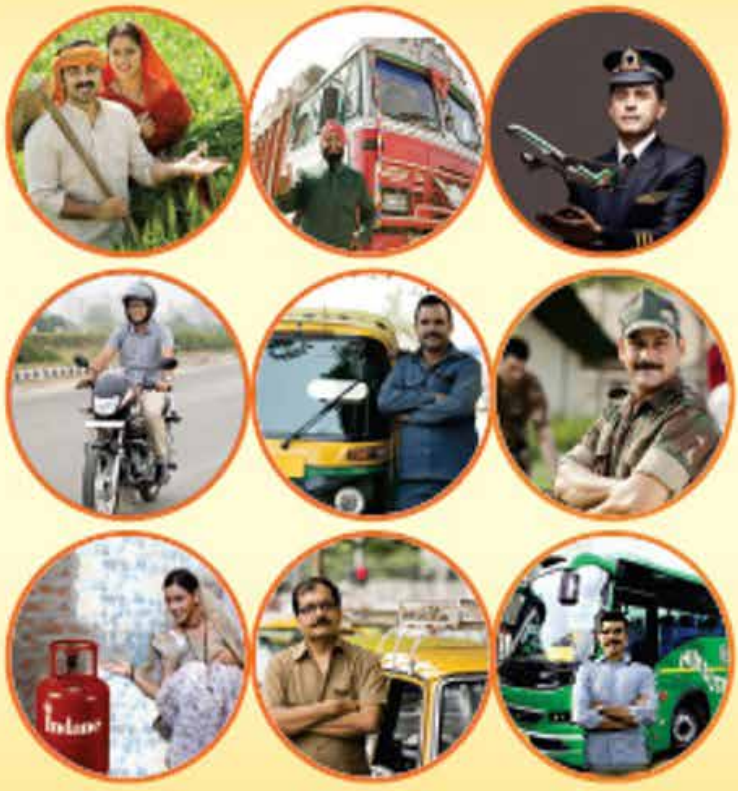

+

Indians to thank...

Your support fuels our passion to serve.

www.iocl.com IndianOilCorpLimited IndianOilcl Indianoilcorporationlimited indianoilcorp indian-oil-corp-limited